॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

मुण्डकोपनिषद्

[यह उपनिषद् अथर्ववेदकी शौनकी शाखामें है।]

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ प्रश्नोपनिषद्के आरम्भमें दिया जा चुका है।]

प्रथम मुण्डक

प्रथम खण्ड

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥ १॥

'ॐ' इस परमेश्वरके नामका स्मरण करके उपनिषद्का आरम्भ किया जाता है। इसके द्वारा यहाँ यह सूचित किया गया है कि मनुष्यको प्रत्येक कार्यके आरम्भमें ईश्वरका स्मरण तथा उनके नामका उच्चारण अवश्य करना चाहिये।

विश्वस्य कर्ता=सम्पूर्ण जगत्के रचयिता (और); **भुवनस्य गोप्ता**=सब लोकोंकी रक्षा करनेवाले; **ब्रह्मा**=(चतुर्मुख) ब्रह्माजी; **देवानाम्**=सब देवताओंमें; **प्रथमः**=पहले; **सम्बभूव**=प्रकट हुए; **सः**=उन्होंने; **ज्येष्ठपुत्राय अथर्वाय**=सबसे बड़े पुत्र अथर्वाको; **सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्**=समस्त विद्याओंकी आधारभूता; **ब्रह्मविद्याम् प्राह**=ब्रह्मविद्याका भलीभाँति उपदेश किया॥ १॥

व्याख्या—सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरसे देवताओंमें सर्वप्रथम ब्रह्मा प्रकट हुए। फिर इन्होंने ही सब देवताओं, महर्षियों और मरीचि आदि प्रजापतियोंको उत्पन्न किया। साथ ही, समस्त लोकोंकी रचना भी की तथा उन सबकी रक्षाके सुदृढ़ नियम आदि बनाये। उनके सबसे बड़े पुत्र महर्षि अथर्वा थे; उन्हींको सबसे पहले ब्रह्माजीने ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया था। जिस विद्यासे ब्रह्मके पर और अपर—दोनों स्वरूपोंका पूर्णतया ज्ञान हो, उसे ब्रह्मविद्या कहते हैं; यह सम्पूर्ण विद्याओंकी आश्रय है॥ १॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्॥ २॥

ब्रह्मा=ब्रह्माने; **याम्**=जिस विद्याका; **अथर्वणे**=अथर्वाको; **प्रवदेत**=उपदेश दिया था; **ताम् ब्रह्मविद्याम्**=वही ब्रह्मविद्या; **अथर्वा**=अथर्वाने; **पुरा**=पहले; **अङ्गिरे**=अङ्गी ऋषिसे; **उवाच**=कही; **सः**=उन अङ्गी ऋषिने; **भारद्वाजाय**=भरद्वाज-गोत्री; **सत्यवहाय**=सत्यवह नामक ऋषिको; **प्राह**=बतलायी; **भारद्वाजः**=भारद्वाजने; **परावराम्**=पहलेवालोंसे पीछेवालोंको प्राप्त हुई उस परम्परागत विद्याको; **अङ्गिरसे**=अङ्गिरा नामक ऋषिसे; [**प्राह**=कहा] ॥ २ ॥

व्याख्या—अथर्वा ऋषिको जो ब्रह्मविद्या ब्रह्मासे मिली थी, वही ब्रह्मविद्या उन्होंने अङ्गी ऋषिको बतलायी और अङ्गीने भरद्वाज-गोत्रमें उत्पन्न सत्यवह नामक ऋषिको कही। भारद्वाज ऋषिने परम्परासे चली आती हुई ब्रह्मके पर और अपर—दोनों स्वरूपोंका ज्ञान करानेवाली इस ब्रह्मविद्याका उपदेश अङ्गिरा नामक ऋषिको दिया॥ २ ॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति॥ ३ ॥

ह=विख्यात है (कि); **शौनकः वै**=शौनक नामसे प्रसिद्ध मुनिने; **महाशालः**=जो अति बृहत् विद्यालय (ऋषिकुल)-के अधिष्ठाता थे; **विधिवत्**=शास्त्रविधिके अनुसार; **अङ्गिरसम् उपसन्नः**=महर्षि अङ्गिराकी शरण ली; (और उनसे) **पप्रच्छ**=(विनयपूर्वक) पूछा; **भगवः**=भगवन्; **नु**=निश्चयपूर्वक; **कस्मिन् विज्ञाते**=किसके जान लिये जानेपर; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सब कुछ; **विज्ञातम्**=जाना हुआ; **भवति**=हो जाता है; **इति**=यह (मेरा प्रश्न है) ॥ ३ ॥

व्याख्या—शौनक नामसे प्रसिद्ध एक महर्षि थे, जो बड़े भारी विश्वविद्यालयके अधिष्ठाता थे; पुराणोंके अनुसार उनके ऋषिकुलमें अट्ठासी हजार ऋषि रहते थे। वे उपर्युक्त ब्रह्मविद्याको जाननेके लिये शास्त्रविधिके अनुसार हाथमें समिधा लेकर श्रद्धापूर्वक महर्षि अङ्गिराकी शरणमें आये। उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक महर्षिसे पूछा—'भगवन्! जिसको भलीभाँति जान लेनेपर यह जो कुछ देखने, सुनने और अनुमान करनेमें आता है, सब-का-सब जान लिया जाता है, वह परम तत्त्व क्या है? कृपया बतलाइये कि उसे कैसे जाना जाय'॥ ३ ॥

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥ ४ ॥

तस्मै=उन शौनक मुनिसे; **सः ह**=वे विख्यात महर्षि अङ्गिरा; **उवाच**=बोले; **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मको जाननेवाले; **इति**=इस प्रकार; **ह**=निश्चयपूर्वक; **वदन्ति स्म यत्**=कहते आये हैं कि; **द्वे विद्ये**=दो विद्याएँ; **एव**=ही; **वेदितव्ये**=जाननेयोग्य हैं; **परा**=एक परा; **च**=और; **अपरा**=दूसरी अपरा; **च**=भी॥ ४ ॥

व्याख्या—इस प्रकार शौनकके पूछनेपर महर्षि अङ्गिरा बोले—'शौनक! ब्रह्मको जाननेवाले महर्षियोंका कहना है कि मनुष्यके लिये जाननेयोग्य दो विद्याएँ हैं—एक तो परा और दूसरी अपरा'॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥ ५ ॥

तत्र=उन दोनोंमेंसे; **ऋग्वेदः**=ऋग्वेद; **यजुर्वेदः**=यजुर्वेद; **सामवेदः**=सामवेद; (तथा) **अथर्ववेदः**=अथर्ववेद; **शिक्षा**=शिक्षा; **कल्पः**=कल्प; **व्याकरणम्**=व्याकरण; **निरुक्तम्**=निरुक्त; **छन्दः**=छन्द; **ज्योतिषम्**=ज्योतिष; **इति अपरा**=ये (सब तो) अपरा विद्या (-के अन्तर्गत हैं); **अथ**=तथा; **यया**=जिससे; **तत्**=वह; **अक्षरम्**=अविनाशी परब्रह्म; **अधिगम्यते**=तत्त्वसे जाना जाता है; [**सा**=वह;] **परा**=परा विद्या (है) ॥ ५ ॥

व्याख्या—उन दोनोंमेंसे जिसके द्वारा इस लोक और परलोकसम्बन्धी भोगों तथा उनकी प्राप्तिके साधनोंका ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जिसमें भोगोंकी स्थिति, भोगोंके उपभोग करनेके प्रकार, भोग-सामग्रीकी रचना और उनको उपलब्ध करनेके नाना साधन आदिका वर्णन है, वह तो अपरा विद्या है; जैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चारों वेद। इनमें नाना प्रकारके यज्ञोंकी विधिका और उनके फलका विस्तारपूर्वक

वर्णन है। जगत्के सभी पदार्थोंका एवं विषयोंका वेदोंमें भलीभाँति वर्णन किया गया है। यह अवश्य है कि इस समय वेदकी सब शाखाएँ उपलब्ध नहीं हैं और उनमें वर्णित विविध विज्ञानसम्बन्धी बातोंको समझनेवाले भी नहीं हैं। वेदोंका पाठ अर्थात् यथार्थ उच्चारण करनेकी विधिका उपदेश 'शिक्षा' है। जिसमें यज्ञ-याग आदिकी विधि बतलायी गयी है, उसे 'कल्प' कहते हैं (गृह्यसूत्र आदिकी गणना कल्पमें ही है)। वैदिक और लौकिक शब्दोंके अनुशासनका—प्रकृति-प्रत्यय-विभागपूर्वक शब्द-साधनकी प्रक्रिया, शब्दार्थ-बोधके प्रकार एवं शब्दप्रयोग आदिके नियमोंके उपदेशका नाम 'व्याकरण' है। वैदिक शब्दोंका जो कोष है, जिसमें अमुक पद अमुक वस्तुका वाचक है—यह बात कारणसहित बतायी गयी है, उसको 'निरुक्त' कहते हैं। वैदिक छन्दोंकी जाति और भेद बतलानेवाली विद्या 'छन्द' कहलाती है। ग्रह और नक्षत्रोंकी स्थिति, गति और उनके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है—इन सब बातोंपर जिसमें विचार किया गया है, वह 'ज्यौतिष' विद्या है। इस प्रकार चार वेद और छः वेदाङ्ग—इन दसका नाम अपरा विद्या है और जिसके द्वारा परब्रह्म अविनाशी परमात्माका तत्त्वज्ञान होता है, वह परा विद्या है। उसका वर्णन भी वेदोंमें ही है, अतः उतने अंशको छोड़कर अन्य सब वेद और वेदाङ्गोंको अपरा विद्याके अन्तर्गत समझना चाहिये॥ ५॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलायी हुई परा विद्याके द्वारा जिसका ज्ञान होता है, वह अविनाशी ब्रह्म कैसा है—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥ ६॥

तत्=वह; **यत्**=जो; **अद्रेश्यम्**=जाननेमें न आनेवाला; **अग्राह्यम्**=पकड़नेमें न आनेवाला; **अगोत्रम्**=गोत्र आदिसे रहित; **अवर्णम्**=रंग और आकृतिसे रहित; **अचक्षुःश्रोत्रम्**=नेत्र, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंसे रहित; (और) **अपाणिपादम्**=(और) हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियोंसे (भी) रहित है; [**तथा**=तथा;] **तत्**=वह; **यत्**=जो; **नित्यम्**=नित्य; **विभुम्**=सर्वव्यापी; **सर्वगतम्**=सबमें फैला हुआ; **सुसूक्ष्मम्**=अत्यन्त सूक्ष्म (और); **अव्ययम्**=अविनाशी परब्रह्म है; **तत्**=उस; **भूतयोनिम्**=समस्त प्राणियोंके परमकारणको; **धीराः**=ज्ञानीजन; **परिपश्यन्ति**=सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं॥ ६॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें परब्रह्म परमेश्वरके निराकार स्वरूपका वर्णन किया गया है। सारांश यह है कि वे परब्रह्म परमेश्वर ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा जाननेमें नहीं आते, न कर्मेन्द्रियोंद्वारा पकड़नेमें ही आते हैं। वे गोत्र आदि उपाधियोंसे रहित तथा ब्राह्मण आदि वर्णगतभेदसे एवं रंग और आकृतिसे भी सर्वथा रहित हैं। वे नेत्र, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंसे और हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियोंसे भी रहित हैं। तथा वे अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक, अन्तरात्मारूपसे सबमें फैले हुए और कभी नाश न होनेवाले सर्वथा नित्य हैं। समस्त प्राणियोंके उन परम कारणको ज्ञानीजन सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*वे जगदात्मा परमेश्वर समस्त भूतोंके परम कारण कैसे हैं, सम्पूर्ण जगत् उनसे किस प्रकार उत्पन्न होता है, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥ ७॥

यथा=जिस प्रकार; **ऊर्णनाभिः**=मकड़ी; **सृजते**=(जालेको) बनाती है; **च**=और; **गृह्णते**=निगल जाती है (तथा); **यथा**=जिस प्रकार; **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **ओषधयः**=नाना प्रकारकी ओषधियाँ; **सम्भवन्ति**=उत्पन्न होती हैं (और); **यथा**=जिस प्रकार; **सतः पुरुषात्**=जीवित मनुष्यसे; **केशलोमानि**=केश और रोएँ (उत्पन्न होते हैं); **तथा**=उसी प्रकार; **अक्षरात्**=अविनाशी परब्रह्मसे; **इह**=यहाँ—इस सृष्टिमें; **विश्वम्**=सब कुछ; **सम्भवति**=उत्पन्न होता है॥ ७॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें तीन दृष्टान्तोंद्वारा यह बात समझायी गयी है कि परब्रह्म परमेश्वर ही इस जड-चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत्‌के निमित्त और उपादान कारण हैं। पहले मकड़ीके दृष्टान्तसे यह बात कही गयी है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने पेटमें स्थित जालेको बाहर निकालकर फैलाती है और फिर उसे निगल जाती है, उसी प्रकार वह परब्रह्म परमेश्वर अपने अंदर सूक्ष्मरूपसे लीन हुए जड-चेतनरूप जगत्‌को सृष्टिके आरम्भमें नाना प्रकारसे उत्पन्न करके फैलाते हैं और प्रलयकालमें पुनः उसे अपनेमें लीन कर लेते हैं (गीता ९।७-८)। दूसरे उदाहरणसे यह बात समझायी गयी है कि जिस प्रकार पृथ्वीमें जिस-जिस प्रकारकी अन्न, तृण, वृक्ष, लता आदि ओषधियोंके बीज पड़ते हैं, उसी प्रकारकी भिन्न-भिन्न भेदोंवाली ओषधियाँ वहाँ उत्पन्न हो जाती हैं—उसमें पृथ्वीका कोई पक्षपात नहीं है, उसी प्रकार जीवोंके नाना प्रकारके कर्मरूप बीजोंके अनुसार ही भगवान् उनको भिन्न-भिन्न योनियोंमें उत्पन्न करते हैं, अतः उनमें किसी प्रकारकी विषमता और निर्दयताका दोष नहीं है (ब्रह्मसूत्र २।१।३४)। तीसरे मनुष्य-शरीरके उदाहरणसे यह बात समझायी गयी है कि जिस प्रकार मनुष्यके जीवित शरीरसे सर्वथा विलक्षण केश, रोएँ और नख अपने-आप उत्पन्न होते और बढ़ते रहते हैं—उसके लिये उसको कोई कार्य नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वरसे यह जगत् स्वभावसे ही समयपर उत्पन्न हो जाता है और विस्तारको प्राप्त होता है; इसके लिये भगवान्‌को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसीलिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि 'मैं इस जगत्‌को बनानेवाला होनेपर भी अकर्ता ही हूँ' (गीता ४।१३)। 'उदासीनकी तरह स्थित रहनेवाले मुझ परमेश्वरको वे कर्म लिप्त नहीं करते' (गीता ९।१०) इत्यादि॥ ७॥

सम्बन्ध—*अब संक्षेपमें जगत्‌की उत्पत्तिका क्रम बतलाते हैं—*

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥ ८॥

ब्रह्म=परब्रह्म; **तपसा**=विज्ञानमय तपसे; **चीयते**=उपचय (वृद्धि)-को प्राप्त होता है; **ततः**=उससे; **अन्नम्**=अन्न; **अभिजायते**=उत्पन्न होता है; **अन्नात्**=अन्नसे (क्रमशः); **प्राणः**=प्राण; **मनः**=मन; **सत्यम्**=सत्य (स्थूलभूत); **लोकाः**=समस्त लोक (और कर्म); **च**=तथा; **कर्मसु**=कर्मोंसे; **अमृतम्**=अवश्यम्भावी सुख-दुःखरूप फल उत्पन्न होता है॥ ८॥

व्याख्या—जब जगत्‌की रचनाका समय आता है, उस समय परब्रह्म परमेश्वर अपने संकल्परूप तपसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं अर्थात् उनमें विविध रूपोंवाली सृष्टिके निर्माणका संकल्प उठता है। जीवोंके कर्मानुसार उन परब्रह्म पुरुषोत्तममें जो सृष्टिके आदिमें स्फुरणा होती है, वही मानो उनका तप है; उस स्फुरणाके होते ही भगवान्, जो पहले अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें रहते हैं, (जिसका वर्णन छठे मन्त्रमें आ चुका है) उसकी अपेक्षा स्थूल हो जाते हैं अर्थात् वे सृष्टिकर्ता ब्रह्माका रूप धारण कर लेते हैं। ब्रह्मासे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाला अन्न उत्पन्न होता है। फिर अन्नसे क्रमशः प्राण, मन, कार्यरूप पाँच महाभूत, समस्त प्राणी और उनके वासस्थान, उनके भिन्न-भिन्न कर्म और उन कर्मोंसे उनका अवश्यम्भावी सुख-दुःखरूप फल—इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*अब परमेश्वरकी महिमाका वर्णन करते हुए इस प्रकरणका उपसंहार करते हैं—*

यः सर्वज्ञः सर्ववित्‌यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥ ९॥

यः=जो; **सर्वज्ञः**=सर्वज्ञ (तथा); **सर्ववित्**=सबको जाननेवाला (है); **यस्य**=जिसका; **ज्ञानमयम्**=ज्ञानमय; **तपः**=तप (है); **तस्मात्**=उसी परमेश्वरसे; **एतत्**=यह; **ब्रह्म**=विराट्स्वरूप जगत्; **च**=तथा; **नाम**=नाम; **रूपम्**=रूप; (और) **अन्नम्**=भोजन; **जायते**=उत्पन्न होते हैं॥ ९॥

व्याख्या—वे सम्पूर्ण जगत्के कारणभूत परम पुरुष परमेश्वर साधारणरूपसे तथा विशेषरूपसे भी सबको भलीभाँति जानते हैं; उन परब्रह्मका एकमात्र ज्ञान ही तप है। उन्हें साधारण मनुष्योंकी भाँति जगत्की उत्पत्तिके लिये कष्ट-सहनरूप तप नहीं करना पड़ता। उन सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरके संकल्पमात्रसे ही यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला विराट्स्वरूप जगत् (जिसे अपर ब्रह्म कहते हैं) अपने-आप प्रकट हो जाता है और समस्त प्राणियों तथा लोकोंके नाम, रूप और आहार आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं।

शौनक ऋषिने यह पूछा था कि 'किसको जाननेसे यह सब कुछ जान लिया जाता है?' इसके उत्तरमें समस्त जगत्के परम कारण परब्रह्म परमात्मासे जगत्की उत्पत्ति बतलाकर संक्षेपमें यह बात समझायी गयी कि उन सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सबके कर्ता-धर्ता परमेश्वरको जान लेनेपर यह सब कुछ ज्ञात हो जाता है॥ ९॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त॥ १॥

[द्वितीय खण्ड]

सम्बन्ध—*पहले खण्डके चौथे मन्त्रमें परा और अपरा—इन दो विद्याओंको जाननेयोग्य बताया था, उनमेंसे अब इस खण्डमें अपरा विद्याका स्वरूप और फल बतलाकर परा विद्याकी जिज्ञासा उत्पन्न की जाती है—*

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके॥ १॥

तत्=वह; **एतत्**=यह; **सत्यम्**=सत्य है कि; **कवयः**=बुद्धिमान् ऋषियोंने; **यानि**=जिन; **कर्माणि**=कर्मोंको; **मन्त्रेषु**=वेद-मन्त्रोंमें; **अपश्यन्**=देखा था; **तानि**=वे; **त्रेतायाम्**=तीनों वेदोंमें; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **सन्ततानि**=व्याप्त हैं; **सत्यकामाः**=हे सत्यको चाहनेवाले मनुष्यो!; (तुमलोग) **तानि**=उनका; **नियतम्**=नियमपूर्वक; **आचरथ**=अनुष्ठान करो; **लोके**=इस मनुष्य-शरीरमें; **वः**=तुम्हारे लिये; **एषः**=यही; **सुकृतस्य**=शुभ कर्मकी फल-प्राप्तिका; **पन्थाः**=मार्ग है॥ १॥

व्याख्या—यह सर्वथा सत्य है कि बुद्धिमान् महर्षियोंने जिन उन्नतिके साधनरूप यज्ञादि नाना प्रकारके कर्मोंको वेद-मन्त्रोंमें पहले देखा था, वे कर्म ऋक्, यजुः और साम—इन तीनों वेदोंमें बहुत प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णित हैं (गीता ४।३२)।* अतः जागतिक उन्नति चाहनेवाले मनुष्योंको उन्हें भलीभाँति जानकर नियमपूर्वक उन कर्मोंको करते रहना चाहिये। इस मनुष्य-शरीरमें यही उन्नतिका सुन्दर मार्ग है। आलस्य और प्रमादमें या भोगोंको भोगनेमें पशुओंकी भाँति जीवन बिता देना मनुष्य-शरीरके उपयुक्त नहीं है। यही इस मन्त्रका भाव है॥ १॥

सम्बन्ध—*वेदोक्त अनेक प्रकारके कर्मोंमेंसे उपलक्षणरूपसे प्रधान अग्निहोत्ररूप कर्मका वर्णन आरम्भ करते हैं—*

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत्॥ २॥

यदा हि=जिस समय; **हव्यवाहने समिद्धे**=हविष्यको देवताओंके पास पहुँचानेवाली अग्निके प्रदीप्त हो जानेपर; **अर्चिः**=(उसमें) ज्वालाएँ; **लेलायते**=लपलपाने लगती हैं; **तदा**=उस समय; **आज्यभागौ अन्तरेण**=आज्यभागकी दोनों आहुतियोंके† स्थानको छोड़कर बीचमें; **आहुतीः**=अन्य आहुतियोंको; **प्रतिपादयेत्**=डाले॥ २॥

---

* प्रधानरूपसे वेदोंकी संख्या तीन ही मानी गयी है। जहाँ-तहाँ 'वेदत्रयी' आदि नामोंसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—इन तीनका ही उल्लेख मिलता है। ऐसे स्थलोंमें चौथे अथर्ववेदको उक्त तीनोंके अन्तर्गत ही मानना चाहिये।

† यजुर्वेदके अनुसार प्रजापतिके लिये मौनभावसे एक आहुति और इन्द्रके लिये 'आधार' नामकी दो घृताहुतियाँ देनेके पश्चात् जो अग्नि और सोम देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् दो आहुतियाँ दी जाती हैं, उनका नाम 'आज्यभाग' है। 'ॐ अग्नये स्वाहा' कहकर उत्तर-पूर्वार्धमें और 'ॐ सोमाय स्वाहा' कहकर दक्षिण-पूर्वार्धमें ये आहुतियाँ डाली जाती हैं; इनके बीचमें शेष आहुतियाँ डालनी चाहिये।

व्याख्या—अधिकारी मनुष्योंको नित्यप्रति अग्निहोत्र करना चाहिये। जब देवताओंको हविष्य पहुँचानेवाली अग्नि अग्निहोत्रकी वेदीमें भलीभाँति प्रज्वलित हो जाय, उसमेंसे लपटें निकलने लगें, उस समय आज्यभागके स्थानको छोड़कर मध्यमें आहुतियाँ डालनी चाहिये। क्योंकि नित्य अग्निहोत्रमें आज्यभागकी दो आहुतियाँ देनेका नियम नहीं है। इससे यह बात भी समझायी गयी है कि जबतक अग्नि प्रदीप्त न हो, उसमेंसे लपटें न निकलने लगें, तबतक या निकलकर शान्त हो जायँ, उस समय अग्निमें आहुति नहीं डालनी चाहिये। अग्निको अच्छी तरह प्रज्वलित करके ही अग्निहोत्र करना चाहिये॥ २॥

सम्बन्ध—*नित्य अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्यको उसके साथ-साथ और क्या-क्या करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं*—

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति॥ ३॥

यस्य=जिसका; **अग्निहोत्रम्**=अग्निहोत्र; **अदर्शम्**=दर्श नामक यज्ञसे रहित है; **अपौर्णमासम्**=पौर्णमास नामक यज्ञसे रहित है; **अचातुर्मास्यम्**=चातुर्मास्य नामक यज्ञसे रहित है; **अनाग्रयणम्**=आग्रयण कर्मसे रहित है; **च**=तथा; **अतिथिवर्जितम्**=जिसमें अतिथि-सत्कार नहीं किया जाता; **अहुतम्**=जिसमें समयपर आहुति नहीं दी जाती; **अवैश्वदेवम्**=जो बलिवैश्वदेव नामक कर्मसे रहित है; (तथा) **अविधिना हुतम्**=जिसमें शास्त्र-विधिकी अवहेलना करके हवन किया गया है, ऐसा अग्निहोत्र; **तस्य**=उस अग्निहोत्रीके; **आसप्तमान्**=सातों; **लोकान्**=पुण्य लोकोंका; **हिनस्ति**=नाश कर देता है॥ ३॥

व्याख्या—नित्य अग्निहोत्र करनेवाला मनुष्य यदि दर्श* और पौर्णमासयज्ञ† नहीं करता या चातुर्मास्य यज्ञ‡ नहीं करता अथवा शरद् और वसन्त ऋतुओंमें की जानेवाली नवीन अन्नकी इष्टिरूप आग्रयण यज्ञ नहीं करता, यदि उसकी यज्ञशालामें अतिथियोंका विधिपूर्वक सत्कार नहीं किया जाता या वह नित्य अग्निहोत्रमें ठीक समयपर और शास्त्रविधिके अनुसार हवन नहीं करता एवं बलिवैश्वदेव-कर्म नहीं करता तो उस अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्यके सातों लोकोंको वह अङ्गहीन अग्निहोत्र नष्ट कर देता है। अर्थात् उस यज्ञके द्वारा उसे मिलनेवाले जो पृथ्वीलोकसे लेकर सत्यलोकतक सातों लोकोंमें प्राप्त होनेयोग्य भोग हैं, उनसे वह वञ्चित रह जाता है॥ ३॥

सम्बन्ध—*दूसरे मन्त्रमें यह बात कही गयी थी कि जब अग्निमें लपटें निकलने लगें, तब आहुति देनी चाहिये; अतः अब उन लपटोंके प्रकार-भेद और नाम बतलाते हैं*—

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः॥ ४॥

या=जो; **काली**=काली; **कराली**=कराली; **च**=तथा; **मनोजवा**=मनोजवा; **च**=और; **सुलोहिता**=सुलोहिता; **च**=तथा; **सुधूम्रवर्णा**=सुधूम्रवर्णा; **स्फुलिङ्गिनी**=स्फुलिङ्गिनी; **च**=तथा; **विश्वरुची देवी**=विश्वरुची देवी; **इति**=ये (अग्निकी); **सप्त**=सात; **लेलायमानाः**=लपलपाती हुई; **जिह्वाः**=जिह्वाएँ हैं॥ ४॥

व्याख्या—काली—काले रंगवाली, कराली—अति उग्र (जिसमें आग लग जानेका डर रहता है), मनोजवा—मनकी भाँति अत्यन्त चञ्चल, सुलोहिता—सुन्दर लाली लिये हुए, सुधूम्रवर्णा—सुन्दर धूएँके-से रंगवाली,

---

* प्रत्येक अमावस्याको की जानेवाली इष्टि।

† प्रत्येक पूर्णिमाको की जानेवाली इष्टि।

‡ चार महीनोंमें पूरा होनेवाला एक श्रौत यागविशेष।

स्फुलिङ्गिनी—चिनगारियोंवाली तथा विश्वरुची देवी—सब ओरसे प्रकाशित, देदीप्यमान—इस प्रकार ये सात तरहकी लपटें मानो अग्निदेवकी हविको ग्रहण करनेके लिये लपलपाती हुई सात जिह्वाएँ हैं। अतः जब इस प्रकार अग्निदेवता आहुतिरूप भोजन ग्रहण करनेके लिये तैयार हों, उसी समय भोजनरूप आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये; अन्यथा अप्रज्वलित अथवा बुझी हुई अग्निमें दी हुई आहुति राखमें मिलकर व्यर्थ नष्ट हो जाती है॥ ४॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त प्रकारसे प्रदीप्त अग्निमें नियमपूर्वक नित्यप्रति हवन करनेका फल बतलाते हैं—*

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः॥ ५॥

यः च=जो कोई भी अग्निहोत्री; **एतेषु भ्राजमानेषु**=इन देदीप्यमान ज्वालाओंमें; **यथाकालम्**=ठीक समयपर; **चरते**=अग्निहोत्र करता है; **तम्**=उस अग्निहोत्रीको; **हि**=निश्चय ही; **आददायन्**=अपने साथ लेकर; **एताः**=ये; **आहुतयः**=आहुतियाँ; **सूर्यस्य**=सूर्यकी; **रश्मयः [भूत्वा]**=किरणें (बनकर); **नयन्ति**=(वहाँ) पहुँचा देती हैं; **यत्र**=जहाँ; **देवानाम्**=देवताओंका; **एक**=एकमात्र; **पतिः**=स्वामी (इन्द्र); **अधिवासः**=निवास करता है॥ ५॥

व्याख्या—जो कोई भी साधक पूर्वमन्त्रमें बतलायी हुई सात प्रकारकी लपटोंसे युक्त भलीभाँति प्रज्वलित अग्निमें ठीक समयपर शास्त्रविधिके अनुसार नित्यप्रति आहुति देकर अग्निहोत्र करता है, उसे मरणकालमें अपने साथ लेकर ये आहुतियाँ सूर्यकी किरणें बनकर वहाँ पहुँचा देती हैं, जहाँ देवताओंका एकमात्र स्वामी इन्द्र निवास करता है। तात्पर्य यह कि अग्निहोत्र स्वर्गके सुखोंकी प्राप्तिका अमोघ उपाय है॥ ५॥

सम्बन्ध—*किस प्रकार ये आहुतियाँ सूर्य-किरणोंद्वारा यजमानको इन्द्रलोकमें ले जाती हैं—ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं—*

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः॥ ६॥

सुवर्चसः=(वे) देदीप्यमान; **आहुतयः**=आहुतियाँ; **एहि एहि**=आओ, आओ; **एषः**=यह; **वः**=तुम्हारे; **सुकृतः**=शुभ कर्मोंसे प्राप्त; **पुण्यः**=पवित्र; **ब्रह्मलोकः**=ब्रह्मलोक (स्वर्ग) है; **इति**=इस प्रकारकी; **प्रियाम्**=प्रिय; **वाचम्**=वाणी; **अभिवदन्त्यः**=बार-बार कहती हुई (और); **अर्चयन्त्यः**=उसका आदर-सत्कार करती हुई; **तम्**=उस; **यजमानम्**=यजमानको; **सूर्यस्य**=सूर्यकी; **रश्मिभिः**=रश्मियोंद्वारा; **वहन्ति**=ले जाती हैं॥ ६॥

व्याख्या—उन प्रदीप्त ज्वालाओंमें दी हुई आहुतियाँ सूर्यकी किरणोंके रूपमें परिणत होकर मरणकालमें उस साधकसे कहती हैं—'आओ, आओ, यह तुम्हारे शुभ कर्मोंका फलस्वरूप ब्रह्मलोक अर्थात् भोगरूप सुखोंको भोगनेका स्थान स्वर्गलोक है।' इस प्रकारकी प्रिय वाणी बार-बार कहती हुई आदर-सत्कारपूर्वक उसे सूर्यकी किरणोंके मार्गसे ले जाकर स्वर्गलोकमें पहुँचा देती हैं। यहाँ स्वर्गको ब्रह्मलोक कहनेका यह भाव मालूम होता है कि स्वर्गके अधिपति इन्द्र भी भगवान्‌के ही अपर स्वरूप हैं, अतः प्रकारान्तरसे ब्रह्म ही हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*अब सांसारिक भोगोंमें वैराग्यकी और परम आनन्दस्वरूप परमेश्वरको पानेकी अभिलाषा उत्पन्न करनेके लिये उपर्युक्त स्वर्गलोकके साधनरूप यज्ञादि सकाम कर्म और उनके फलरूप लौकिक एवं पारलौकिक भोगोंकी तुच्छता बतलाते हैं—*

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति॥ ७॥

हि=निश्चय ही; **एते**=ये; **यज्ञरूपाः**=यज्ञरूप; **अष्टादश प्लवाः**=अठारह नौकाएँ; **अदृढाः**=अदृढ (अस्थिर) हैं; **येषु**=जिनमें; **अवरम्**=नीची श्रेणीका; **कर्म**=उपासनारहित सकाम कर्म; **उक्तम्**=बताया गया है; **ये**=जो; **मूढाः**=मूर्ख; **एतत् [एव]**=यही; **श्रेयः**=कल्याणका मार्ग है (यों मानकर); **अभिनन्दन्ति**=इसकी प्रशंसा करते हैं; **ते**=वे; **पुनः अपि**=बारम्बार; **एव**=निःसंदेह; **जरामृत्युम्**=वृद्धावस्था और मृत्युको; **यन्ति**=प्राप्त होते रहते हैं॥ ७॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें यज्ञको नौकाका रूप दिया गया है और उनकी संख्या अठारह बतलायी गयी है; इससे अनुमान होता है कि नित्य, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य आदि भेदोंसे यज्ञके अठारह प्रधान भेद होते हैं। कहना यह है कि जिनमें उपासनारहित सकाम कर्मोंका वर्णन है, ऐसी ये यज्ञरूप अठारह नौकाएँ हैं, जो कि दृढ़ नहीं हैं। इनके द्वारा संसारसमुद्रसे पार होना तो दूर रहा, इस लोकके वर्तमान दुःखरूप छोटी-सी नदीसे पार होकर स्वर्गतक पहुँचनेमें भी संदेह है; क्योंकि तीसरे मन्त्रके वर्णनानुसार किसी भी अङ्गकी कमी रह जानेपर वे साधकको स्वर्गमें नहीं पहुँचा सकतीं, बीचमें ही छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। इसलिये ये अदृढ़ अर्थात् अस्थिर हैं। इस रहस्यको न समझकर जो मूर्खलोग इन सकाम कर्मोंको ही कल्याणका उपाय समझकर—इनके ही फलको परम सुख मानकर इनकी प्रशंसा करते रहते हैं, उन्हें निःसंदेह बारम्बार वृद्धावस्था और मरणके दुःख भोगने पड़ते हैं॥ ७॥

सम्बन्ध—*वे किस प्रकार दुःख भोगते हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हैं—*

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ ८॥

अविद्यायाम् अन्तरे=अविद्याके भीतर; **वर्तमानाः**=स्थित होकर (भी); **स्वयंधीराः**=अपने-आप बुद्धिमान् बननेवाले (और); **पण्डितम् मन्यमानाः**=अपनेको विद्वान् माननेवाले; **मूढाः**=वे मूर्खलोग; **जङ्घन्यमानाः**=बार-बार आघात (कष्ट) सहन करते हुए; **परियन्ति**=(ठीक वैसे ही) भटकते रहते हैं; **यथा**=जैसे; **अन्धेन एव**=अन्धेके द्वारा ही; **नीयमानाः**=चलाये जानेवाले; **अन्धाः**=अंधे (अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर बीचमें ही इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते रहते हैं)॥ ८॥

व्याख्या—जब अन्धे मनुष्यको मार्ग दिखलानेवाला भी अन्धा ही मिल जाता है, तब जैसे वह अपने अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच पाता, बीचमें ही ठोकरें खाता भटकता है और काँटे-कंकड़ोंसे बिंधकर या गहरे गड्ढे आदिमें गिरकर अथवा किसी चट्टान, दीवाल और पशु आदिसे टकराकर नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, वैसे ही उस मूर्खको भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दुःखपूर्ण योनियोंमें एवं नरकादिमें प्रवेश करके अनन्त जन्मोंतक अनन्त यन्त्रणाओंका भोग करना पड़ता है, जो अपने-आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझता है, विद्या-बुद्धिके मिथ्याभिमानमें शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंकी कुछ भी परवा न करके उनकी अवहेलना करता और प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होनेवाले भोगोंको भोग करनेमें तथा उनके उपार्जनमें ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करता रहता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*वे लोग बारम्बार दुःखोंमें पड़कर भी चेतते क्यों नहीं, कल्याणके लिये चेष्टा क्यों नहीं करते, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥ ९॥

बालाः=वे मूर्खलोग; **अविद्यायाम्**=उपासनारहित सकाम कर्मोंमें; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **वर्तमानाः**=वर्तते हुए; **वयम्**=हम; **कृतार्थाः**=कृतार्थ हो गये; **इति अभिमन्यन्ति**=ऐसा अभिमान कर लेते हैं; **यत्**=क्योंकि; **कर्मिणः**=वे सकाम कर्म करनेवाले लोग; **रागात्**=विषयोंकी आसक्तिके कारण; **न प्रवेदयन्ति**=कल्याणके मार्गको नहीं जान पाते; **तेन**=इस कारण; **आतुराः**=बारम्बार दुःखसे आतुर हो; **क्षीणलोकाः**=पुण्योपार्जित लोकोंसे हटाये जाकर; **च्यवन्ते**=नीचे गिर जाते हैं॥ ९॥

व्याख्या—पूर्वमन्त्रमें कहे हुए प्रकारसे जो इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिके लिये सांसारिक उन्नतिके साधनरूप नाना प्रकारके सकाम कर्मोंमें ही बहुत प्रकारसे लगे रहते हैं, वे अविद्यामें निमग्न अज्ञानी मनुष्य समझते हैं कि 'हमने अपने कर्तव्यका पालन कर लिया।' उन सांसारिक कर्मोंमें लगे हुए मनुष्योंकी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति होती है, इस कारण वे सांसारिक उन्नतिके सिवा कल्याणकी ओर दृष्टि ही नहीं डालते। उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि परमानन्दके समुद्र कोई परमात्मा हैं और मनुष्य उन्हें पा सकता है। इसलिये वे उन परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये चेष्टा न करके बारम्बार दुःखी होते रहते हैं और पुण्यकर्मोंका फल पूरा होनेपर वे स्वर्गादि लोकोंसे नीचे गिर जाते हैं॥ ९॥

सम्बन्ध—*ऊपर कही हुई बातको ही और भी स्पष्ट करते हैं—*

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति॥ १०॥

इष्टापूर्तम्=इष्ट और पूर्त* (सकाम) कर्मोंको ही; **वरिष्ठम्**=श्रेष्ठ; **मन्यमानाः**=माननेवाले; **प्रमूढाः**=अत्यन्त मूर्खलोग; **अन्यत्**=उससे भिन्न; **श्रेयः**=वास्तविक श्रेयको; **न वेदयन्ते**=नहीं जानते; **ते**=वे; **सुकृते**=पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप; **नाकस्य पृष्ठे**=स्वर्गके उच्चतम स्थानमें; **अनुभूत्वा**=(जाकर श्रेष्ठ कर्मोंके फलस्वरूप) वहाँके भोगोंका अनुभव करके; **इमम् लोकम्**=इस मनुष्यलोकमें; **वा**=अथवा; **हीनतरम्**=इससे भी अत्यन्त हीन योनियोंमें; **विशन्ति**=प्रवेश करते हैं॥ १०॥

व्याख्या—वे अतिशय मूर्ख भोगासक्त मनुष्य इष्ट और पूर्तको अर्थात् वेद और स्मृति आदि शास्त्रोंमें सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिके जितने भी साधन बताये गये हैं, उन्हींको सर्वश्रेष्ठ कल्याण-साधन मानते हैं। इसलिये उनसे भिन्न अर्थात् परमेश्वरका भजन, ध्यान और निष्कामभावसे कर्तव्यपालन करना एवं परम पुरुष परमात्माको जाननेके लिये तीव्र जिज्ञासापूर्वक चेष्टा करना आदि जितने भी परम कल्याणके साधन हैं, उन्हें वे नहीं जानते, उन कल्याण-साधनोंकी ओर लक्ष्यतक नहीं करते। अतः वे अपने पुण्यकर्मोंके फलरूप स्वर्गलोकतकके सुखोंको भोगकर पुण्य क्षय होनेपर पुनः इस मनुष्यलोकमें अथवा इससे भी नीची शूकर-कूकर, कीट-पतङ्ग आदि योनियोंमें या रौरवादि घोर नरकोंमें चले जाते हैं। (गीता ९। २०-२१)॥ १०॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलाये हुए सांसारिक भोगोंसे विरक्त मनुष्योंके आचार-व्यवहार और उनके फलका वर्णन करते हैं—*

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥ ११॥

हि=किंतु; **ये**=जो; **अरण्ये [स्थिताः]**=वनमें रहनेवाले; **शान्ताः**=शान्त स्वभाववाले; **विद्वांसः**=विद्वान्; **भैक्ष्यचर्याम् चरन्तः**=तथा भिक्षाके लिये विचरनेवाले; **तपःश्रद्धे**=संयमरूप तप तथा श्रद्धाका; **उपवसन्ति**=सेवन करते हैं; **ते**=वे; **विरजाः**=रजोगुणरहित; **सूर्यद्वारेण**=सूर्यके मार्गसे; **[तत्र] प्रयान्ति**=वहाँ चले जाते हैं; **यत्र हि**=जहाँपर; **सः**=वह; **अमृतः**=जन्म-मृत्युसे रहित; **अव्ययात्मा**=नित्य, अविनाशी; **पुरुषः**=परम पुरुष (रहता है)॥ ११॥

व्याख्या—उपर्युक्त भोगासक्त मनुष्योंसे जो सर्वथा भिन्न हैं, मनुष्य-शरीरका महत्त्व समझ लेनेके कारण जिनके अन्तःकरणमें परमात्माका तत्त्व जाननेकी और परमेश्वरको प्राप्त करनेकी इच्छा जग उठी है, वे चाहे वनमें निवास करनेवाले वानप्रस्थ हों, शान्त स्वभाववाले विद्वान् सदाचारी गृहस्थ हों या भिक्षासे निर्वाह करनेवाले ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी हों, वे तो निरन्तर तप और श्रद्धाका ही सेवन किया करते हैं अर्थात् अपने-अपने वर्ण, आश्रम तथा परिस्थितिके अनुसार जिस समय जो कर्तव्य होता है, उसका शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार बिना

* यज्ञ-यागादि श्रौत कर्मोंको 'इष्ट' तथा बावली, कुआँ खुदवाना और बगीचे लगाना आदि स्मृतिविहित कर्मको 'पूर्त' कहते हैं।

किसी प्रकारकी कामनाके पालन करते रहते हैं और संयमपूर्वक शम-दमादि साधनोंसे सम्पन्न होकर परम श्रद्धाके साथ परमेश्वरको जानने और प्राप्त करनेके साधनोंमें लगे रहते हैं। इसलिये तम और रजोगुणके विकारोंसे सर्वथा शून्य निर्मल सत्त्वगुणमें स्थित वे सज्जन सूर्यलोकमें होते हुए वहाँ चले जाते हैं, जहाँ उनके परम प्राप्य अमृतस्वरूप नित्य अविनाशी परम पुरुष पुरुषोत्तम निवास करते हैं॥ ११॥

सम्बन्ध—*उन परब्रह्म परमेश्वरको जानने और प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको क्या करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ १२॥

कर्मचितान्=कर्मसे प्राप्त किये जानेवाले; **लोकान् परीक्ष्य**=लोकोंकी परीक्षा करके; **ब्राह्मणः**=ब्राह्मण; **निर्वेदम्**=वैराग्यको; **आयात्**=प्राप्त हो जाय (यह समझ ले कि); **कृतेन**=किये जानेवाले सकाम कर्मोंसे; **अकृतः**=स्वतःसिद्ध नित्य परमेश्वर; **न अस्ति**=नहीं मिल सकता; **सः**=वह; **तद्विज्ञानार्थम्**=उस परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये; **समित्पाणिः**=हाथमें समिधा लेकर; **श्रोत्रियम्**=वेदको भलीभाँति जाननेवाले (और); **ब्रह्मनिष्ठम्**=परब्रह्म परमात्मामें स्थित; **गुरुम्**=गुरुके पास; **एव**=ही; **अभिगच्छेत्**=विनयपूर्वक जाय॥ १२॥

व्याख्या—अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको पहले बतलाये हुए सकाम कर्मोंके फलस्वरूप इस लोक और परलोकके समस्त सांसारिक सुखोंकी भलीभाँति परीक्षा करके अर्थात् विवेकपूर्वक उनकी अनित्यता और दुःखरूपताको समझकर सब प्रकारके भोगोंसे सर्वथा विरक्त हो जाना चाहिये। यह निश्चय कर लेना चाहिये कि कर्तापनके अभिमानपूर्वक सकामभावसे किये जानेवाले कर्म अनित्य फलको देनेवाले तथा स्वयं भी अनित्य हैं। अतः जो सर्वथा अकृत है अर्थात् क्रियासाध्य नहीं है, ऐसे नित्य परमेश्वरकी प्राप्ति वे नहीं करा सकते। यह सोचकर उस जिज्ञासुको परमात्माका वास्तविक तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये हाथमें समिधा लेकर श्रद्धा और विनयभावके सहित ऐसे सद्गुरुकी शरणमें जाना चाहिये, जो वेदोंके रहस्यको भलीभाँति जानते हों और परब्रह्म परमात्मामें स्थित हों॥ १२॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलाये हुए लक्षणोंवाला कोई शिष्य यदि गुरुके पास आ जाय तो गुरुको क्या करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥ १३॥

सः=वह; **विद्वान्**=ज्ञानी महात्मा; **उपसन्नाय**=शरणमें आये हुए; **सम्यक्प्रशान्तचित्ताय**=पूर्णतया शान्त-चित्तवाले; **शमान्विताय**=मन और इन्द्रियोंपर विजय पाये हुए; **तस्मै**=उस शिष्यको; **ताम् ब्रह्मविद्याम्**=उस ब्रह्मविद्याका; **तत्त्वतः**=तत्त्व-विवेचनपूर्वक; **प्रोवाच**=भलीभाँति उपदेश करे; **येन [सः]**=जिससे वह शिष्य; **अक्षरम्**=अविनाशी; **सत्यम्**=नित्य; **पुरुषम्**=परम पुरुषको; **वेद**=जान ले॥ १३॥

व्याख्या—उन श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्माको भी चाहिये कि अपनी शरणमें आये हुए ऐसे शिष्यको, जिसका चित्त पूर्णतया शान्त—निश्चल हो चुका हो, सांसारिक भोगोंमें सर्वथा वैराग्य हो जानेके कारण जिसके चित्तमें किसी प्रकारकी चिन्ता, व्याकुलता या विकार नहीं रह गये हों, जिसने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भलीभाँति वशमें कर लिया हो, उस ब्रह्मविद्याका तत्त्व-विवेचनपूर्वक भलीभाँति समझाकर उपदेश करे, जिससे वह शिष्य नित्य अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तमका ज्ञान प्राप्त कर सके॥ १३॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त॥ २॥

॥ प्रथम मुण्डक समाप्त॥ १॥

द्वितीय मुण्डक

[प्रथम खण्ड]

सम्बन्ध—*प्रथम मुण्डकके द्वितीय खण्डमें अपरविद्याका स्वरूप और फल बतलाया तथा उसकी तुच्छता दिखाते हुए उससे विरक्त होनेकी बात कहकर परविद्या प्राप्त करनेके लिये सद्गुरुकी शरणमें जानेको कहा। अब परविद्याका वर्णन करनेके लिये प्रकरण आरम्भ करते हैं—*

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्त्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥ १॥

सोम्य=हे प्रिय!; **तत्**=वह; **सत्यम्**=सत्य; **एतत्**=यह है; **यथा**=जिस प्रकार; **सुदीप्तात् पावकात्**=प्रज्वलित अग्निमेंसे; **सरूपाः**=उसीके समान रूपवाली; **सहस्त्रशः**=हजारों; **विस्फुलिङ्गाः**=चिनगारियाँ; **प्रभवन्ते**=नाना प्रकारसे प्रकट होती हैं; **तथा**=उसी प्रकार; **अक्षरात्**=अविनाशी ब्रह्मसे; **विविधाः**=नाना प्रकारके; **भावाः**=भाव; **प्रजायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **च**=और; **तत्र एव**=उसीमें; **अपियन्ति**=विलीन हो जाते हैं*॥ १॥

व्याख्या—महर्षि अङ्गिरा कहते हैं—प्रिय शौनक! मैंने तुमको पहले परब्रह्म परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए (पूर्व प्रकरणके पहले खण्डमें छठे मन्त्रसे नवेंतक) जो रहस्य बतलाया था, वह सर्वथा सत्य है; अब उसीको पुनः समझाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निमेंसे उसीके-जैसे रूप-रंगवाली हजारों चिनगारियाँ चारों ओर निकलती हैं, उसी प्रकार परमपुरुष अविनाशी ब्रह्मसे सृष्टिकालमें नाना प्रकारके भाव—मूर्त-अमूर्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं और प्रलयकालमें पुनः उन्हींमें विलीन हो जाते हैं। यहाँ भावोंके प्रकट होनेकी बात समझानेके लिये ही अग्नि और चिनगारियोंका दृष्टान्त दिया गया है। उनके विलीन होनेकी बात दृष्टान्तसे स्पष्ट नहीं होती॥ १॥

सम्बन्ध—*जिन परब्रह्म अविनाशी पुरुषोत्तमसे यह जगत् उत्पन्न होकर पुनः उन्हींमें विलीन हो जाता है, वे स्वयं कैसे हैं—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥ २॥

हि=निश्चय ही; **दिव्यः**=दिव्य; **पुरुषः**=पूर्णपुरुष; **अमूर्तः**=आकाररहित; **सबाह्याभ्यन्तरः हि**=समस्त जगत्के बाहर और भीतर भी व्याप्त; **अजः**=जन्मादि विकारोंसे अतीत; **अप्राणः**=प्राणरहित; **अमनाः**=मनरहित; **हि**=होनेके कारण; **शुभ्रः**=सर्वथा विशुद्ध है (तथा); **हि**=इसीलिये; **अक्षरात्**=अविनाशी जीवात्मासे; **परतः परः**=अत्यन्त श्रेष्ठ है॥ २॥

व्याख्या—वे दिव्य पुरुष परमात्मा निःसन्देह आकाररहित और समस्त जगत्के बाहर एवं भीतर भी परिपूर्ण हैं। वे जन्म आदि विकारोंसे रहित, सर्वथा विशुद्ध हैं; क्योंकि उनके न तो प्राण हैं, न इन्द्रियाँ हैं और न मन ही है। वे इन सबके बिना ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; इसीलिये वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अविनाशी जीवात्मासे अत्यन्त श्रेष्ठ—सर्वथा उत्तम हैं॥ २॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त लक्षणोंवाले निराकार परमेश्वरसे यह साकार जगत् किस प्रकार उत्पन्न हो जाता है, इस जिज्ञासापर उनकी सर्वशक्तिमत्ताका वर्णन करते हैं—*

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥ ३॥

एतस्मात्=इसी परमेश्वरसे; **प्राणः**=प्राण; **जायते**=उत्पन्न होता है (तथा); **मनः**=मन (अन्तःकरण);

---

* प्रथम मुण्डकके प्रथम खण्डके सातवें मन्त्रमें मकड़ी, पृथ्वी और मनुष्य-शरीरके दृष्टान्तसे जो बात कही थी, वही बात इस मन्त्रमें अग्निके दृष्टान्तसे समझायी गयी है।

सर्वेन्द्रियाणि=समस्त इन्द्रियाँ; **खम्**=आकाश; **वायुः**=वायु; **ज्योतिः**=तेज; **आपः**=जल; **च**=और; **विश्वस्य धारिणी**=सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली; **पृथिवी**=पृथ्वी (ये सब उत्पन्न होते हैं)॥ ३॥

व्याख्या—यद्यपि वे परब्रह्म पुरुषोत्तम निराकार और मन, इन्द्रिय आदि करणसमुदायसे सर्वथा रहित हैं, तथापि सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। इन सर्वशक्तिमान् परब्रह्म पुरुषोत्तमसे ही सृष्टिकालमें प्राण, मन (अन्तःकरण) और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी—ये पाँचों महाभूत, सब-के-सब उत्पन्न होते हैं॥ ३॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार संक्षेपमें परमेश्वरसे सूक्ष्म तत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रकार बतलाकर अब इस जगत्में भगवान्‌का विराट्‌रूप देखनेका प्रकार बतलाते हैं—*

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥ ४॥

अस्य=इस परमेश्वरका; **अग्निः**=अग्नि; **मूर्धा**=मस्तक है; **चन्द्रसूर्यौ**=चन्द्रमा और सूर्य; **चक्षुषी**=दोनों नेत्र हैं; **दिशः**=सब दिशाएँ; **श्रोत्रे**=दोनों कान हैं; **च**=और; **विवृताः वेदाः**=प्रकट वेद; **वाक्**=वाणी हैं (तथा); **वायुः प्राणः**=वायु प्राण है; **विश्वम् हृदयम्**=जगत् हृदय है; **पद्भ्याम्**=इसके दोनों पैरोंसे; **पृथिवी**=पृथ्वी उत्पन्न हुई है; **एषः हि**=यही; **सर्वभूतान्तरात्मा**=समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मा है॥ ४॥

व्याख्या—दूसरे मन्त्रमें जिन परमेश्वरके निराकार स्वरूपका वर्णन किया गया है, उन्हीं परब्रह्मका यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला जगत् विराट्‌रूप है। इन विराट्‌स्वरूप परमेश्वरका अग्नि अर्थात् द्युलोक ही मानो मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, समस्त दिशाएँ कान हैं, नाना छन्द और ऋचाओंके रूपमें विस्तृत चारों वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, सम्पूर्ण चराचर जगत् हृदय है, पृथ्वी मानो उनके पैर है। यही परब्रह्म परमेश्वर समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं॥ ४॥

सम्बन्ध—*उन परमात्मासे इस चराचर जगत्‌की उत्पत्ति किस क्रमसे होती है, इस जिज्ञासापर प्रकारान्तरसे जगत्‌की उत्पत्तिका क्रम बतलाते हैं—*

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।
पुमान्रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः॥ ५॥

तस्मात्=उससे ही; **अग्निः**=अग्निदेव प्रकट हुआ; **यस्य समिधः**=जिसकी समिधा; **सूर्यः**=सूर्य है; (उस अग्निसे सोम उत्पन्न हुआ) **सोमात्**=सोमसे; **पर्जन्यः**=मेघ उत्पन्न हुए (और मेघोंसे वर्षाद्वारा); **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **ओषधयः**=नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं; **रेतः**=(ओषधियोंके भक्षणसे उत्पन्न हुए) वीर्यको; **पुमान्**=पुरुष; **योषितायाम्**=स्त्रीमें; **सिञ्चति**=सिंचन करता है (जिससे संतान उत्पन्न होती है); [**एवम्**=इस प्रकार;] **पुरुषात्**=उस परम पुरुषसे ही; **बह्वीः प्रजाः**=नाना प्रकारके जीव; **सम्प्रसूताः**=नियमपूर्वक उत्पन्न हुए हैं॥ ५॥

व्याख्या—जब-जब परमेश्वरसे यह जगत् उत्पन्न होता है, तब-तब सदैव एक प्रकारसे ही होता हो—ऐसा नियम नहीं है। वे जब जैसा संकल्प करते हैं, उसी प्रकार उसी क्रमसे जगत् उत्पन्न हो जाता है। इसी भावको प्रकट करनेके लिये यहाँ प्रकारान्तरसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है। मन्त्रका सारांश यह है कि परब्रह्म पुरुषोत्तमसे सर्वप्रथम तो उनकी अचिन्त्य शक्तिका एक अंश अद्भुत अग्नितत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसकी समिधा (इंधन) सूर्य है, अर्थात् जो सूर्यबिम्बके रूपमें प्रज्वलित रहती है; अग्निसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ; चन्द्रमासे (सूर्यकी रश्मियोंमें सूक्ष्मरूपसे स्थित जलमें कुछ शीतलता आ जानेके कारण) मेघ उत्पन्न हुए। मेघोंसे वर्षाद्वारा पृथ्वीमें नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। उन ओषधियोंके भक्षणसे उत्पन्न हुए वीर्यको जब पुरुष अपनी जातिकी स्त्रीमें सिंचन करता है, तब उससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वरसे ये नाना प्रकारके चराचर जीव उत्पन्न हुए हैं॥ ५॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका क्रम बतलाकर अब उन सबकी रक्षाके लिये किये जानेवाले यज्ञादि, उनके साधन और फल भी उन्हीं परमेश्वरसे प्रकट होते हैं—यह बात बतायी जाती है—*

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः॥ ६॥

तस्मात्=उस परमेश्वरसे ही; **ऋचः**=ऋग्वेदकी ऋचाएँ; **साम**=सामवेदके मन्त्र; **यजूंषि**=यजुर्वेदकी श्रुतियाँ; [**च**=और;] **दीक्षा**=दीक्षा; **च**=तथा; **सर्वे**=समस्त; **यज्ञाः**=यज्ञ; **क्रतवः**=क्रतु; **च**=एवं; **दक्षिणाः**=दक्षिणाएँ; **च**=तथा; **संवत्सरः**=संवत्सररूप काल; **यजमानः**=यजमान; **च**=और; **लोकाः**=सब लोक (उत्पन्न हुए हैं); **यत्र**=जहाँ; **सोमः**=चन्द्रमा; **पवते**=प्रकाश फैलाता है (और); **यत्र**=जहाँ; **सूर्यः**=सूर्य; [**पवते**=प्रकाश देता है]॥ ६॥

व्याख्या—उन परमेश्वरसे ही ऋग्वेदकी ऋचाएँ, सामवेदके मन्त्र और यजुर्वेदकी श्रुतियाँ एवं यज्ञादि कर्मोंकी दीक्षा,* सब प्रकारके यज्ञ और क्रतु,† उनमें दी जानेवाली दक्षिणाएँ, जिसमें वे किये जाते हैं—वह संवत्सररूप काल, उनको करनेका अधिकारी यजमान, उनके फलस्वरूप वे सब लोक, जहाँ चन्द्रमा और सूर्य प्रकाश फैलाते हैं,—ये सब उत्पन्न हुए हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*अब देवादि समस्त प्राणियोंके भेद और सब प्रकारके सदाचार भी उन्हीं ब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं, यह बतलाते हैं—*

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च॥ ७॥

च=तथा; **तस्मात्**=उसी परमेश्वरसे; **बहुधा**=अनेक भेदोंवाले; **देवाः**=देवतालोग; **सम्प्रसूताः**=उत्पन्न हुए; **साध्याः**=साध्यगण; **मनुष्याः**=मनुष्य; **पशवः वयांसि**=पशु-पक्षी; **प्राणापानौ**=प्राण-अपान वायु; **व्रीहियवौ**=धान, जौ आदि अन्न; **च**=तथा; **तपः**=तप; **श्रद्धा**=श्रद्धा; **सत्यम्**=सत्य (और); **ब्रह्मचर्यम्**=ब्रह्मचर्य; **च**=एवं; **विधिः**=यज्ञ आदिके अनुष्ठानकी विधि भी; [**एते सम्प्रसूताः**=ये सब-के-सब उत्पन्न हुए हैं]॥ ७॥

व्याख्या—उन परब्रह्म परमेश्वरसे ही वसु, रुद्र आदि अनेक भेदोंवाले देवतालोग उत्पन्न हुए हैं। उन्हींसे साध्यगण, नाना प्रकारके मनुष्य, विभिन्न जातियोंके पशु, विविध भाँतिके पक्षी और अन्य सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं। सबके जीवनरूप प्राण और अपान तथा सब प्राणियोंके आहाररूप धान, जौ आदि अनेक प्रकारके अन्न भी उन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। उन्हींसे तप, श्रद्धा, सत्य और ब्रह्मचर्य प्रकट हुए हैं तथा यज्ञादि कर्म करनेकी विधि भी उन परमेश्वरसे ही प्रकट हुई है। तात्पर्य यह कि सब कुछ उन्हींसे उत्पन्न हुआ है। वे ही सबके परम कारण हैं॥ ७॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त॥ ८॥

तस्मात्=उसी परमेश्वरसे; **सप्त**=सात; **प्राणाः**=प्राण; **प्रभवन्ति**=उत्पन्न होते हैं (तथा); **सप्त अर्चिषः**=अग्निकी (काली-कराली आदि) सात लपटें; [**सप्त**] **समिधः**=सात (विषयरूपी) समिधाएँ; **सप्त**=सात प्रकारके; **होमाः**=हवन (तथा); **इमे सप्त लोकाः**=ये सात लोक—इन्द्रियोंके सात द्वार (उसीसे उत्पन्न होते हैं); **येषु**=जिनमें; **प्राणाः**=प्राण; **चरन्ति**=विचरते हैं; **गुहाशयाः**=हृदयरूप गुफामें शयन करनेवाले ये; **सप्त सप्त**=सात-सातके समुदाय; **निहिताः**=(उसीके द्वारा) सब प्राणियोंमें स्थापित किये हुए हैं॥ ८॥

---

* शास्त्रविधिके अनुसार किसी यज्ञका आरम्भ करते समय यजमान जो संकल्पके साथ उसके अनुष्ठानसम्बन्धी नियमोंके पालनका व्रत लेता है, उसका नाम 'दीक्षा' है।

† यज्ञ और क्रतु—ये यज्ञके ही दो भेद हैं। जिन यज्ञोंमें यूप बनानेकी विधि है, उन्हें 'क्रतु' कहते हैं।

व्याख्या—उन्हीं परमेश्वरसे सात प्राण अर्थात् जिनमें विषयोंको प्रकाशित करनेकी विशेष शक्ति है, ऐसी सात इन्द्रियाँ—कान, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण तथा वाणी एवं मन;* मन और इन्द्रियोंकी मनन करना, सुनना, स्पर्श करना, देखना, स्वाद लेना, सूँघना और बोलना इस प्रकार सात वृत्तियाँ अर्थात् विषय ग्रहण करनेवाली शक्तियाँ; उन इन्द्रियोंके विषयरूप सात समिधाएँ; सात प्रकारका हवन अर्थात् बाह्यविषयरूप समिधाओंका इन्द्रियरूप अग्नियोंमें निक्षेपरूप क्रिया और इन इन्द्रियोंके वासस्थानरूप सात लोक, जिनमें रहकर ये इन्द्रियरूप सात प्राण अपना-अपना कार्य करते हैं,—निद्राके समय मनके साथ एक होकर हृदयरूप गुफामें शयन करनेवाले ये सात-सातके समुदाय परमेश्वरके द्वारा ही समस्त प्राणियोंमें स्थापित किये गये हैं॥ ८॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार आध्यात्मिक वस्तुओंकी उत्पत्ति और स्थिति परमेश्वरसे बतलाकर अब बाह्य जगत्की उत्पत्ति भी उसीसे बताते हुए प्रकरणका उपसंहार करते हैं—*

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥ ९॥

अतः=इसीसे; **सर्वे**=समस्त; **समुद्राः**=समुद्र; **च**=और; **गिरयः**=पर्वत (उत्पन्न हुए हैं); **अस्मात्**=इसीसे (प्रकट होकर); **सर्वरूपाः**=अनेक रूपोंवाली; **सिन्धवः**=नदियाँ; **स्यन्दन्ते**=बहती हैं; **च**=तथा; **अतः**=इसीसे; **सर्वाः**=सम्पूर्ण; **ओषधयः**=ओषधियाँ; **च**=और; **रसः**=रस (उत्पन्न हुए हैं); **येन**=जिस रससे (पुष्ट हुए शरीरोंमें); **हि**=ही; **एषः**=यह; **अन्तरात्मा**=(सबका) अन्तरात्मा (परमेश्वर); **भूतैः**=सब प्राणियों (-की आत्मा)-के सहित; **तिष्ठते**=(उन-उनके हृदयमें) स्थित है॥ ९॥

व्याख्या—इन्हीं परमेश्वरसे समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए हैं, इन्हींसे निकलकर अनेक आकारवाली नदियाँ बह रही हैं, इन्हींसे समस्त ओषधियाँ और वह रस भी उत्पन्न हुआ है, जिससे पुष्ट हुए शरीरोंमें वे सबके अन्तरात्मा परमेश्वर उन सब प्राणियोंकी आत्माके सहित उन-उनके हृदयमें रहते हैं॥ ९॥

सम्बन्ध—*उन परमेश्वरसे सबकी उत्पत्ति होनेके कारण सब उन्हींका स्वरूप है, यह कहकर उनको जाननेका फल बताते हुए इस खण्डकी समाप्ति करते हैं—*

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य॥ १०॥

तपः=तप; **कर्म**=कर्म (और); **परामृतम्**=परम अमृतरूप; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **इदम्**=यह; **विश्वम्**=सब कुछ; **पुरुषः एव**=परम पुरुष पुरुषोत्तम ही है; **सोम्य**=हे प्रिय!; **एतत्**=इस; **गुहायाम्**=हृदयरूप गुफामें; **निहितम्**=स्थित अन्तर्यामी परम पुरुषको; **यः**=जो; **वेद**=जानता है; **सः**=वह; **इह [एव]**=यहाँ (इस मनुष्य-शरीरमें) ही; **अविद्याग्रन्थिम्**=अविद्याजनित गाँठको; **विकिरति**=खोल डालता है॥ १०॥

व्याख्या—तप अर्थात् संयमरूप साधन, कर्म अर्थात् बाह्य साधनोंद्वारा किये जानेवाले कृत्य तथा परम अमृत ब्रह्म—यह सब कुछ परम पुरुष पुरुषोत्तम ही है। प्रिय शौनक! हृदयरूप गुफामें छिपे हुए इन अन्तर्यामी परमेश्वरको जो जान लेता है, वह इस मनुष्यशरीरमें ही अविद्याजनित अन्तःकरणकी गाँठका भेदन कर देता है अर्थात् सब प्रकारके संशय और भ्रमसे रहित होकर परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त हो जाता है॥ १०॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त॥ १॥

---

* ब्रह्मसूत्रमें इस विषयपर विचार किया गया है कि यहाँ इन्द्रियाँ सात ही क्यों बतलायी गयी हैं। वहाँ कहा गया है कि इन सातके अतिरिक्त हाथ, पैर, उपस्थ तथा गुदा भी इन्द्रियाँ हैं; अतः मनसहित कुल ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। यहाँ प्रधानतासे सातका वर्णन है।

(ब्रह्मसूत्र २।४।५, ६)

द्वितीय खण्ड

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्॥ १॥

आविः=(जो) प्रकाशस्वरूप; **संनिहितम्**=अत्यन्त समीपस्थ; **गुहाचरम् नाम**=(हृदयरूप गुहामें स्थित होनेके कारण) गुहाचर नामसे प्रसिद्ध; **महत् पदम्**=(और) महान् पद (परम प्राप्य) है; **यत्**=जितने भी; **एजत्**=चेष्टा करनेवाले; **प्राणत्**=श्वास लेनेवाले; **च**=और; **निमिषत्**=आँखोंको खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं; **एतत्**=ये (सब-के-सब); **अत्र**=इसीमें; **समर्पितम्**=समर्पित (प्रतिष्ठित) हैं; **एतत्**=इस परमेश्वरको; **जानथ**=तुमलोग जानो; **यत्**=जो; **सत्**=सत्; **असत्**=(और) असत् है; **वरेण्यम्**=सबके द्वारा वरण करनेयोग्य (और); **वरिष्ठम्**=अतिशय श्रेष्ठ है (तथा); **प्रजानाम्**=समस्त प्राणियोंकी; **विज्ञानात्**=बुद्धिसे; **परम्**=परे अर्थात् जाननेमें न आनेवाला है॥ १॥

व्याख्या—सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी परमेश्वर प्रकाशस्वरूप हैं। समस्त प्राणियोंके अत्यन्त समीप उन्हींके हृदयरूप गुहामें छिपे रहनेके कारण ही ये गुहाचर नामसे प्रसिद्ध हैं। जितने भी हिलने-चलनेवाले, श्वास लेनेवाले और आँख खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं, उन सबका समुदाय इन्हीं परमेश्वरमें समर्पित अर्थात् स्थित है। सबके आश्रय ये परमात्मा ही हैं। तुम इनको जानो। ये सत् और असत् अर्थात् कार्य और कारण एवं प्रकट और अप्रकट—सब कुछ हैं। सबके द्वारा वरण करनेयोग्य और अत्यन्त श्रेष्ठ हैं तथा समस्त प्राणियोंकी बुद्धिसे परे अर्थात् बुद्धिद्वारा अज्ञेय हैं॥ १॥

सम्बन्ध—*उन्हीं परब्रह्म परमेश्वरको समझानेके लिये पुनः उसके स्वरूपका दूसरे शब्दोंमें वर्णन करते हैं—*

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि॥ २॥

यत्=जो; **अर्चिमत्**=दीप्तिमान् है; **च**=और; **यत्**=जो; **अणुभ्यः**=सूक्ष्मोंसे भी; **अणु**=सूक्ष्म है; **यस्मिन्**=जिसमें; **लोकाः**=समस्त लोक; **च**=और; **लोकिनः**=उन लोकोंमें रहनेवाले प्राणी; **निहिताः**=स्थित हैं; **तत्**=वही; **एतत्**=यह; **अक्षरम्**=अविनाशी; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **सः**=वही; **प्राणः**=प्राण है; **तत् उ**=वही; **वाक्**=वाणी; **मनः**=(और) मन है; **तत्**=वही; **एतत्**=यह; **सत्यम्**=सत्य है; **तत्**=वह; **अमृतम्**=अमृत है; **सोम्य**=हे प्यारे!; **तत्**=उस; **वेद्धव्यम्**=बेधनेयोग्य लक्ष्यको; **विद्धि**=तू बेध॥ २॥

व्याख्या—जो परब्रह्म परमेश्वर अतिशय देदीप्यमान—प्रकाशस्वरूप हैं, जो सूक्ष्मोंसे भी अतिशय सूक्ष्म हैं, जिनमें समस्त लोक और उन लोकोंमें रहनेवाले समस्त प्राणी स्थित हैं अर्थात् ये सब जिनके आश्रित हैं, वे ही परम अक्षर ब्रह्म हैं, वे ही सबके जीवनदाता प्राण हैं, वे ही सबकी वाणी और मन अर्थात् समस्त जगत्के इन्द्रिय और अन्तःकरणरूपमें प्रकट हैं। वे ही यह परम सत्य और अमृत—अविनाशी तत्त्व हैं। प्रिय शौनक! उस बेधनेयोग्य लक्ष्यको तू बेध अर्थात् आगे बताये जानेवाले प्रकारसे साधन करके उसमें तन्मय हो जा॥ २॥

सम्बन्ध—*लक्ष्यको बेधनेके लिये धनुष और बाण चाहिये; अतः इस रूपककी पूर्णताके लिये सारी सामग्रीका वर्णन करते हैं—*

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥ ३॥

औपनिषदम्=उपनिषद्में वर्णित प्रणवरूप; **महास्त्रम्**=महान् अस्त्र; **धनुः**=धनुषको; **गृहीत्वा**=लेकर (उसपर); **हि**=निश्चय ही; **उपासानिशितम्**=उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किया हुआ; **शरम्**=बाण; **संधयीत**=चढ़ाये; **भावगतेन**=(फिर) भावपूर्ण; **चेतसा**=चित्तके द्वारा; **तत्**=उस बाणको; **आयम्य**=खींचकर; **सोम्य**=हे प्रिय!; **तत्**=उस; **अक्षरम्**=परम अक्षर पुरुषोत्तमको; **एव**=ही; **लक्ष्यम्**=लक्ष्य मानकर; **विद्धि**=बेधे॥ ३॥

व्याख्या—जिस प्रकार किसी बाणको लक्ष्यपर छोड़नेसे पहले उसकी नोकको सानपर धरकर तेज किया जाता है, उसपर चढ़े हुए मोरचे आदिको दूर करके उसे उज्ज्वल एवं चमकीला बनाया जाता है, उसी प्रकार आत्मारूपी बाणको उपासनाद्वारा निर्मल एवं शुद्ध बनाकर उसका प्रणवरूप धनुषपर भलीभाँति संधान करना चाहिये अर्थात् आत्माको प्रणवके उच्चारण एवं उसके अर्थरूप परमात्माके चिन्तनमें सम्यक् प्रकारसे लगाना चाहिये। इसके अनन्तर जैसे धनुषको पूरी शक्तिसे खींचकर बाणको लक्ष्यपर छोड़ा जाता है, जिससे वह पूरी तरहसे लक्ष्यको बेध सके, उसी प्रकार यहाँ भावपूर्ण चित्तसे ओंकारका अधिक-से-अधिक लम्बा उच्चारण एवं उसके अर्थका प्रगाढ़ और सुदीर्घ कालतक चिन्तन करनेके लिये कहा गया है, जिससे आत्मा निश्चितरूपसे परमात्मामें प्रवेश कर जाय, उसमें एकीभावसे अविचल स्थिति प्राप्त कर ले। दूसरे शब्दोंमें, ओंकारका प्रेमपूर्वक उच्चारण एवं उसके अर्थरूप परमात्माका प्रगाढ़ चिन्तन ही उनकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है॥ ३॥

सम्बन्ध—*पूर्वमन्त्रमें कहे हुए रूपकको यहाँ स्पष्ट करते हैं—*

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ ४॥

प्रणवः=(यहाँ) ओंकार ही; **धनुः**=धनुष है; **आत्मा**=आत्मा; **हि**=ही; **शरः**=बाण है (और); **ब्रह्म**=परब्रह्म परमेश्वर ही; **तल्लक्ष्यम्**=उसका लक्ष्य; **उच्यते**=कहा जाता है; **अप्रमत्तेन**=(वह) प्रमादरहित मनुष्यद्वारा ही; **वेद्धव्यम्**=बींधा जानेयोग्य है (अतः); **शरवत्**=(उसे बेधकर) बाणकी तरह; **तन्मयः**=(उस लक्ष्यमें) तन्मय; **भवेत्**=हो जाना चाहिये॥ ४॥

व्याख्या—ऊपर बतलाये हुए रूपकमें परमेश्वरका वाचक प्रणव (ओंकार) ही मानो धनुष है, यह जीवात्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसके लक्ष्य हैं। प्रमादरहित तत्परतासे उनकी उपासना करनेवाले साधकद्वारा ही वह लक्ष्य बेधा जा सकता है; इसलिये हे सोम्य! तुझे पूर्वोक्तरूपसे उस लक्ष्यको बेधकर बाणकी ही भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिये॥ ४॥

सम्बन्ध—*पुनः परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए प्रमादरहित और विरक्त होकर उसे जाननेके लिये श्रुति कहती है—*

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः॥ ५॥

यस्मिन्=जिसमें; **द्यौः**=स्वर्ग; **पृथिवी**=पृथ्वी; **च**=और; **अन्तरिक्षम्**=उनके बीचका आकाश; **च**=तथा; **सर्वैः प्राणैः सह**=समस्त प्राणोंके सहित; **मनः**=मन; **ओतम्**=गुँथा हुआ है; **तम् एव**=उसी; **एकम्**=एक; **आत्मानम्**=सबके आत्मरूप परमेश्वरको; **जानथ**=जानो; **अन्याः**=दूसरी; **वाचः**=सब बातोंको; **विमुञ्चथ**=सर्वथा छोड़ दो; **एषः**=यही; **अमृतस्य**=अमृतका; **सेतुः**=सेतु है॥ ५॥

व्याख्या—जिन परब्रह्म परमात्मामें स्वर्ग, पृथ्वी तथा उनके बीचका सम्पूर्ण आकाश एवं समस्त प्राण और इन्द्रियोंके सहित मन-बुद्धिरूप अन्तःकरण सब-के-सब ओतप्रोत हैं, उन्हीं एक सर्वात्मा परमेश्वरको तुम पूर्वोक्त उपायके द्वारा जानो; दूसरी सब बातोंको—ग्राम्यचर्चाको सर्वथा छोड़ दो। वे सब तुम्हारे साधनमें विघ्न हैं; अतः उनसे सर्वथा विरक्त होकर साधनमें तत्पर हो जाओ। यही अमृतका सेतु है, अर्थात् संसारसमुद्रसे पार होकर अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त करनेके लिये पुलके सदृश है॥ ५॥

सम्बन्ध—*पुनः परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए उनकी प्राप्तिका साधन बताते हैं—*

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्॥ ६॥

रथनाभौ=रथकी नाभिमें (जुड़े हुए); **अराः इव**=अरोंकी भाँति; **यत्र**=जिसमें; **नाड्यः**=समस्त देहव्यापिनी नाड़ियाँ; **संहताः**=एकत्र स्थित हैं; (उसी हृदयमें) **सः**=वह; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **जायमानः**=उत्पन्न होनेवाला; **एषः**=यह (अन्तर्यामी परमेश्वर); **अन्तः**=मध्यभागमें; **चरते**=रहता है; [**एनम्**=इस;] **आत्मानम्**=सर्वात्मा परमात्माका; **ओम्**=ओम्; **इति एवम्**=इस नामके द्वारा ही; **ध्यायथ**=ध्यान करो; **तमसः परस्तात्**=अज्ञानमय अन्धकारसे अतीत; **पाराय**=(तथा) भवसागरके अन्तिम तटरूप पुरुषोत्तमकी प्राप्तिके लिये (साधन करनेमें); **वः**=तुमलोगोंका; **स्वस्ति**=कल्याण; [**अस्तु**=हो] ॥ ६ ॥

व्याख्या—'जिस प्रकार रथके पहियेके केन्द्रमें अरे लगे रहते हैं, उसी प्रकार शरीरकी समस्त नाड़ियाँ जिस हृदयदेशमें एकत्र स्थित हैं, उसी हृदयमें नाना रूपसे प्रकट होनेवाले परब्रह्म परमात्मा अन्तर्यामीरूपसे रहते हैं। इन सबके आत्मा पुरुषोत्तमका 'ओम्' इस नामके उच्चारणके साथ-साथ निरन्तर ध्यान करते रहो। इस प्रकार परमात्माके 'ओम्' इस नामका जप और उसके अर्थभूत परमात्माका ध्यान करते रहनेसे तुम उन परमात्माको प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाओगे, जो अज्ञानरूप अन्धकारसे सर्वथा अतीत और संसारसमुद्रके दूसरे पार हैं। तुम्हारा कल्याण हो।' इस प्रकार आचार्य उपर्युक्त विधिसे साधन करनेवाले शिष्योंको आशीर्वाद देते हैं॥ ६ ॥

सम्बन्ध—*पुनः परमेश्वरके स्वरूपका ही वर्णन करते हैं—*

यः सर्वज्ञः सर्ववित्यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥ ७॥

यः सर्वज्ञः=जो सर्वदा जाननेवाला (और); **सर्ववित्**=सब ओरसे सबको जाननेवाला है; **यस्य**=जिसकी; **भुवि**=जगत्में; **एषः**=यह; **महिमा**=महिमा है; **एषः हि आत्मा**=यह प्रसिद्ध सबका आत्मा परमेश्वर; **दिव्ये व्योम्नि**=दिव्य आकाशरूप; **ब्रह्मपुरे**=ब्रह्मलोकमें; **प्रतिष्ठितः**=स्वरूपसे स्थित है; **प्राणशरीरनेता**=सबके प्राण और शरीरका नेता; **मनोमयः**=(यह परमात्मा मनमें व्याप्त होनेके कारण) मनोमय है; **हृदयं सन्निधाय**=(यही) हृदयकमलका आश्रय लेकर; **अन्ने**=अन्नमय स्थूल शरीरमें; **प्रतिष्ठितः**=प्रतिष्ठित है; **यत्**=जो; **आनन्दरूपम्**=आनन्दस्वरूप; **अमृतम्**=अविनाशी परब्रह्म; **विभाति**=सर्वत्र प्रकाशित है; **धीराः**=बुद्धिमान् मनुष्य; **विज्ञानेन**=विज्ञानके द्वारा; **तत्**=उसको; **परिपश्यन्ति**=भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं॥ ७ ॥

व्याख्या—जो परब्रह्म परमेश्वर सर्वज्ञ—सर्वदा जाननेवाले और सब ओरसे सबको भलीभाँति जाननेवाले हैं अर्थात् जिनकी ज्ञानशक्ति देश-कालसे बाधित नहीं है, जिनकी यह आश्चर्यमयी महिमा जगत्में प्रकट है, वे सबके आत्मा परमेश्वर परम व्योम नामसे प्रसिद्ध दिव्य आकाशरूप ब्रह्मलोकमें स्वरूपसे स्थित हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण और शरीरका नियमन करनेवाले ये परमेश्वर मनमें व्याप्त होनेके कारण मनोमय कहलाते हैं और सब प्राणियोंके हृदयकमलका आश्रय लेकर अन्नमय स्थूलशरीरमें प्रतिष्ठित हैं। बुद्धिमान् मनुष्य विज्ञानद्वारा उन परब्रह्मको भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं, जो आनन्दमय अविनाशीरूपसे सर्वत्र प्रकाशित हैं॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*अब परमात्माके ज्ञानका फल बताते हैं—*

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ ८॥

तस्मिन् परावरे दृष्टे=कार्यकारणस्वरूप उस परात्पर पुरुषोत्तमको तत्त्वसे जान लेनेपर; **अस्य हृदयग्रन्थिः**=इस (जीवात्मा)-के हृदयकी गाँठ; **भिद्यते**=खुल जाती है; **सर्वसंशयाः**=सम्पूर्ण संशय; **छिद्यन्ते**=कट जाते हैं; **च**=और; **कर्माणि**=समस्त शुभाशुभ कर्म; **क्षीयन्ते**=नष्ट हो जाते हैं॥ ८ ॥

व्याख्या—कार्य और कारणस्वरूप उन परात्पर परब्रह्म पुरुषोत्तमको तत्त्वसे जान लेनेपर इस जीवके हृदयकी अविद्यारूप गाँठ खुल जाती है, जिसके कारण इसने इस जड शरीरको ही अपना स्वरूप मान रखा है। इतना ही नहीं, इसके समस्त संशय सर्वथा कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं अर्थात् यह जीव सब बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त होकर परमानन्दस्वरूप परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*उन परब्रह्मके स्थान और स्वरूपका वर्णन करते हुए उन्हें जाननेका महत्त्व बताते हैं*—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ ९॥

तत्=वह; **विरजम्**=निर्मल; **निष्कलम्**=अवयवरहित; **ब्रह्म**=परब्रह्म; **हिरण्मये परे कोशे**=प्रकाशमय परम कोशमें—परमधाममें (विराजमान है); **तत्**=वह; **शुभ्रम्**=सर्वथा विशुद्ध; **ज्योतिषाम्**=समस्त ज्योतियोंकी भी; **ज्योतिः**=ज्योति है; **यत्**=जिसको; **आत्मविदः**=आत्मज्ञानी; **विदुः**=जानते हैं॥ ९॥

व्याख्या—वे निर्मल—निर्विकार और अवयवरहित—अखण्ड परमात्मा प्रकाशमय परमधाममें विराजमान हैं; वे सर्वथा विशुद्ध और समस्त प्रकाशयुक्त पदार्थोंके भी प्रकाशक हैं तथा उन्हें आत्मज्ञानी महात्माजन ही जानते हैं॥ ९॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १०॥

तत्र=वहाँ; **न**=न (तो); **सूर्यः**=सूर्य; **भाति**=प्रकाशित होता है; **न**=न; **चन्द्रतारकम्**=चन्द्रमा और तारागण ही; **न**=(तथा) न; **इमाः**=ये; **विद्युतः**=बिजलियाँ ही; **भान्ति**=(वहाँ) कौंधती हैं; **अयम् अग्निः कुतः**=फिर इस अग्निके लिये तो कहना ही क्या है; **तम् भान्तम् एव**=(क्योंकि) उसके प्रकाशित होनेपर ही (उसीके प्रकाशसे); **सर्वम्**=सब; **अनुभाति**=प्रकाशित होते हैं; **तस्य**=उसीके; **भासा**=प्रकाशसे; **इदम् सर्वम्**=यह सम्पूर्ण जगत्; **विभाति**=प्रकाशित होता है॥ १०॥

व्याख्या—उन स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरके समीप यह सूर्य नहीं प्रकाशित होता। जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश प्रकट होनेपर खद्योतका प्रकाश लुप्त हो जाता है, वैसे ही सूर्यका आंशिक तेज भी उस असीम तेजके सामने लुप्त हो जाता है। चन्द्रमा, तारागण और बिजली भी वहाँ नहीं चमकते; फिर इस लौकिक अग्निकी तो बात ही क्या है। क्योंकि प्राकृत जगत्में जो कुछ भी तत्त्व प्रकाशशील हैं, सब उन परब्रह्म परमेश्वरकी प्रकाश-शक्तिके अंशको पाकर ही प्रकाशित हैं। वे अपने प्रकाशकके समीप अपना प्रकाश कैसे फैला सकते हैं। सारांश यह कि यह सम्पूर्ण जगत् उन जगदात्मा पुरुषोत्तमके प्रकाशसे अथवा उस प्रकाशके एक क्षुद्रतम अंशसे प्रकाशित हो रहा है॥ १०॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ ११॥

इदम्=यह; **अमृतम्**=अमृतस्वरूप; **ब्रह्म**=परब्रह्म; **एव**=ही; **पुरस्तात्**=सामने है; **ब्रह्म**=ब्रह्म ही; **पश्चात्**=पीछे है; **ब्रह्म**=ब्रह्म ही; **दक्षिणतः**=दायीं ओर; **च**=तथा; **उत्तरेण**=बायीं ओर; **अधः**=नीचेकी ओर; **च**=तथा; **ऊर्ध्वम्**=ऊपरकी ओर; **च**=भी; **प्रसृतम्**=फैला हुआ है; **इदम् [यत्]**=यह जो; **विश्वम्**=सम्पूर्ण जगत् है; **इदम्**=यह; **वरिष्ठम्**=सर्वश्रेष्ठ; **ब्रह्म एव**=ब्रह्म ही है॥ ११॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें परमात्माकी सर्वव्यापकता और सर्वरूपताका प्रतिपादन किया गया है। सारांश यह कि ये अमृतस्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही आगे-पीछे, दायें-बायें, बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे—सर्वत्र फैले हुए हैं; इस विश्व-ब्रह्माण्डके रूपमें ये सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही प्रत्यक्ष दिखायी दे रहे हैं॥ ११॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त॥ २॥

॥ द्वितीय मुण्डक समाप्त॥ २॥

तृतीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ १॥

सयुजा=एक साथ रहनेवाले (तथा); **सखाया**=परस्पर सखाभाव रखनेवाले; **द्वा**=दो; **सुपर्णा**=पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा); **समानम् वृक्षम् परिषस्वजाते**=एक ही वृक्ष (शरीर)-का आश्रय लेकर रहते हैं; **तयोः**=उन दोनोंमेंसे; **अन्यः**=एक तो; **पिप्पलम्**=उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका; **स्वादु**=स्वाद ले-लेकर; **अत्ति**=उपभोग करता है (किंतु); **अन्यः**=दूसरा; **अनश्नन्**=न खाता हुआ; **अभिचाकशीति**=केवल देखता रहता है॥ १॥

व्याख्या—जिस प्रकार गीतामें जगत्का अश्वत्थ (पीपल) वृक्षके रूपमें वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इस मन्त्रमें शरीरको पीपलके वृक्षका और जीवात्मा तथा परमात्माको पक्षियोंका रूप देकर वर्णन किया गया है। इसी तरहका वर्णन कठोपनिषद्में भी गुहामें प्रविष्ट छाया और धूपके नामसे आया है। भाव दोनों जगह प्रायः एक ही है। मन्त्रका सारांश यह है कि यह मनुष्य-शरीर मानो एक वृक्ष है। ईश्वर और जीव—ये सदा साथ रहनेवाले दो मित्र पक्षी हैं। ये इस शरीररूप वृक्षमें एक साथ एक ही हृदयरूप घोंसलेमें निवास करते हैं। इन दोनोंमें एक—जीवात्मा तो उस वृक्षके फलरूप अपने कर्म-फलोंको अर्थात् प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए सुख-दुःखोंको आसक्ति एवं द्वेषपूर्वक भोगता है और दूसरा—ईश्वर उन कर्म-फलोंसे किसी प्रकारका किञ्चित् भी सम्बन्ध न जोड़कर केवल देखता रहता है॥ १॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं सदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥ २॥

समाने वृक्षे=पूर्वोक्त शरीररूपी समान वृक्षपर (रहनेवाला); **पुरुषः**=जीवात्मा; **निमग्नः**=(शरीरकी गहरी आसक्तिमें) डूबा हुआ है; **अनीशया**=असमर्थतारूप दीनताका अनुभव करता हुआ; **मुह्यमानः**=मोहित होकर; **शोचति**=शोक करता रहता है; **यदा**=जब कभी (भगवान्की अहैतुकी दयासे); **जुष्टम्**=(भक्तोंद्वारा नित्य) सेवित (तथा); **अन्यम्**=अपनेसे भिन्न; **ईशम्**=परमेश्वरको (और); **अस्य महिमानम्**=उनकी महिमाको; **पश्यति**=यह प्रत्यक्ष कर लेता है; **इति**=तब; **वीतशोकः**=सर्वथा शोकरहित हो जाता है॥ २॥

व्याख्या—पहले वर्णन किये हुए शरीररूप एक ही वृक्षपर हृदयरूप घोंसलेमें रहनेवाला यह जीवात्मा जबतक अपने साथ रहनेवाले उन परम सुहृद् परमेश्वरकी ओर नहीं देखता, शरीरमें ही आसक्त होकर इसीमें निमग्न हुआ रहता है अर्थात् शरीरमें अतिशय ममता करके उसके द्वारा भोगोंके भोगनेमें ही रचा-पचा रहता है, तबतक असमर्थतारूप दीनतासे मोहित होकर वह नाना प्रकारके दुःख भोगता रहता है। जब कभी भगवान्की निर्हैतुकी दयासे अपनेसे भिन्न, नित्य अपने ही समीप रहनेवाले, परम सुहृद्, परम प्रिय और भक्तोंद्वारा सेवित ईश्वरको और उनकी आश्चर्यमयी महिमाको, जो जगत्में सर्वत्र भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रकट हो रही है, प्रत्यक्ष कर लेता है, तब तत्काल ही वह सर्वथा शोकरहित हो जाता है॥ २॥

सम्बन्ध—*ईश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए उन्हें जान लेनेका फल बताते हैं—*

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥ ३॥

यदा=जब; **पश्यः**=यह द्रष्टा (जीवात्मा); **ईशम्**=सबके शासक; **ब्रह्मयोनिम्**=ब्रह्माके भी आदि कारण; **कर्तारम्**=सम्पूर्ण जगत्के रचयिता; **रुक्मवर्णम्**=दिव्य प्रकाशस्वरूप; **पुरुषम्**=परम पुरुषको; **पश्यते**=प्रत्यक्ष कर लेता है; **तदा**=उस समय; **पुण्यपापे**=पुण्य-पाप दोनोंको; **विधूय**=भलीभाँति हटाकर; **निरञ्जनः**=निर्मल हुआ; **विद्वान्**=वह ज्ञानी महात्मा; **परमम्**=सर्वोत्तम; **साम्यम्**=समताको; **उपैति**=प्राप्त कर लेता है॥ ३॥

व्याख्या—पूर्वोक्त प्रकारसे परमेश्वरकी आश्चर्यमयी महिमाकी ओर दृष्टिपात करके उनके सम्मुख जानेवाला द्रष्टा (जीवात्मा) जब सबके नियन्ता, ब्रह्माके भी आदि कारण, सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले, दिव्य प्रकाशस्वरूप परम पुरुष परमेश्वरका साक्षात् कर लेता है, उस समय वह अपने समस्त पुण्य-पापरूप कर्मोंका समूल नाशकर उनसे सर्वथा सम्बन्धरहित होकर परम निर्मल हुआ ज्ञानी भक्त सर्वोत्तम समताको प्राप्त हो जाता है। गीताके बारहवें अध्यायमें श्लोक १३ से १९ तक इस समताका कई प्रकारसे वर्णन किया गया है॥ ३॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥ ४॥

एषः=यह (परमेश्वर); **हि**=ही; **प्राणः**=प्राण है; **यः**=जो; **सर्वभूतैः**=सब प्राणियोंके द्वारा; **विभाति**=प्रकाशित हो रहा है; **विजानन्**=(इसको) जाननेवाला; **विद्वान्**=ज्ञानी; **अतिवादी**=अभिमानपूर्वक बढ़-बढ़कर बातें करनेवाला; **न भवते**=नहीं होता (किंतु वह); **क्रियावान्**=यथायोग्य भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करता हुआ; **आत्मक्रीडः**=सबके आत्मरूप अन्तर्यामी परमेश्वरमें क्रीडा करता रहता है (और); **आत्मरतिः**=सबके आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वरमें ही रमण करता रहता है; **एषः**=यह (ज्ञानी भक्त); **ब्रह्मविदाम्**=ब्रह्मवेत्ताओंमें भी; **वरिष्ठः**=श्रेष्ठ है॥ ४॥

व्याख्या—ये सर्वव्यापी परमेश्वर ही सबके प्राण हैं; जिस प्रकार शरीरकी सारी चेष्टाएँ प्राणके द्वारा होती हैं, उसी प्रकार इस विश्वमें भी जो कुछ हो रहा है, परमात्माकी शक्तिसे ही हो रहा है। समस्त प्राणियोंमें भी उन्हींका प्रकाश है, वे ही उन प्राणियोंके द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं। इस बातको समझनेवाला ज्ञानी भक्त कभी बढ़-बढ़कर बातें नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि उसके अंदर भी उन सर्वव्यापक परमात्माकी ही शक्ति अभिव्यक्त है; फिर वह किस बातपर अभिमान करे। वह तो लोकसंग्रहके लिये भगवदाज्ञानुसार अपने वर्ण, आश्रमके अनुकूल कर्म करता हुआ सबके आत्मा अन्तर्यामी भगवान्में ही क्रीडा करता है। वह सदा भगवान्में ही रमण करता है। ऐसा यह भगवान्का ज्ञानी भक्त ब्रह्मवेत्ताओंमें भी अति श्रेष्ठ है। गीतामें भी सबको वासुदेवरूप देखनेवाले ज्ञानी भक्तको महात्मा और सुदुर्लभ बताया गया है (७।१९)॥ ४॥

सम्बन्ध—*उन परमात्माकी प्राप्तिके साधन बताते हैं*—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥ ५॥

एषः=यह; **अन्तःशरीरे हि**=शरीरके भीतर ही (हृदयमें विराजमान); **ज्योतिर्मयः**=प्रकाशस्वरूप (और); **शुभ्रः**=परम विशुद्ध; **आत्मा**=परमात्मा; **हि**=निस्संदेह; **सत्येन**=सत्य-भाषण; **तपसा**=तप (और); **ब्रह्मचर्येण**=ब्रह्मचर्यपूर्वक; **सम्यग्ज्ञानेन**=यथार्थ ज्ञानसे ही; **नित्यम्**=सदा; **लभ्यः**=प्राप्त होनेवाला है; **यम्**=जिसे; **क्षीणदोषाः**=सब प्रकारके दोषोंसे रहित हुए; **यतयः**=यत्नशील साधक ही; **पश्यन्ति**=देख पाते हैं॥ ५॥

व्याख्या—सबके शरीरके भीतर हृदयमें विराजमान परम विशुद्ध प्रकाशमय ज्ञानस्वरूप परब्रह्म परमात्मा, जिनको सब प्रकारके दोषोंसे रहित हुए प्रयत्नशील साधक ही जान सकते हैं, सदैव सत्य-भाषण, तपश्चर्या, संयम और स्वार्थत्याग तथा ब्रह्मचर्यके पालनसे उत्पन्न यथार्थ ज्ञानद्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं।

इनसे रहित होकर जो भोगोंमें आसक्त हैं, भोगोंकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके मिथ्याभाषण करते हैं और आसक्तिवश नियमपूर्वक अपने वीर्यकी रक्षा नहीं कर सकते, वे स्वार्थपरायण अविवेकी मनुष्य उन परमात्माका अनुभव नहीं कर सकते; क्योंकि वे उनको चाहते ही नहीं॥ ५॥

सम्बन्ध—*पूर्वोक्त साधनोंमेंसे सत्यकी महिमा बताते हैं—*

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥ ६॥

सत्यम्=सत्य; **एव**=ही; **जयति**=विजयी होता है; **अनृतम्**=झूठ; **न**=नहीं; **हि**=क्योंकि; **देवयानः**=वह देवयान नामक; **पन्थाः**=मार्ग; **सत्येन**=सत्यसे; **विततः**=परिपूर्ण है; **येन**=जिससे; **आप्तकामाः**=पूर्णकाम; **ऋषयः**=ऋषिलोग (वहाँ); **आक्रमन्ति**=गमन करते हैं; **यत्र**=जहाँ; **तत्**=वह; **सत्यस्य**=सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका; **परमम्**=उत्कृष्ट; **निधानम्**=धाम है॥ ६॥

व्याख्या—सत्यकी ही विजय होती है, झूठकी नहीं। अभिप्राय यह है कि परमात्मा सत्यस्वरूप हैं; अतः उनकी प्राप्तिके लिये मनुष्यमें सत्यकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये। परमात्मप्राप्तिके लिये तो सत्य अनिवार्य साधन है ही; जगत्में दूसरे सब कार्योंमें भी अन्ततः सत्यकी ही विजय होती है, झूठकी नहीं। जो लोग मिथ्या-भाषण, दम्भ और कपटसे उन्नतिकी आशा रखते हैं, वे अन्तमें बुरी तरहसे निराश होते हैं। मिथ्या-भाषण और मिथ्या आचरणोंमें भी जो सत्यका आभास है, जिसके कारण दूसरे लोग उसे किसी अंशमें सत्य मान लेते हैं, उसीसे कुछ क्षणिक लाभ-सा हो जाता है। परंतु उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। अन्तमें सत्य सत्य ही रहता है और झूठ झूठ ही। इसीसे बुद्धिमान् मनुष्य सत्यभाषण और सदाचारको ही अपनाते हैं, झूठको नहीं; क्योंकि जिनकी भोग-वासना नष्ट हो गयी है, ऐसे पूर्णकाम ऋषिलोग जिस मार्गसे वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ इस सत्यके परमाधार परब्रह्म परमात्मा स्थित हैं, वह देवयान मार्ग अर्थात् उन परमदेव परमात्माको प्राप्त करनेका साधनरूप मार्ग सत्यसे ही परिपूर्ण है; उसमें असत्यभाषण और दम्भ, कपट आदि असत् आचरणोंके लिये स्थान नहीं है॥ ६॥

सम्बन्ध—उपर्युक्त साधनोंसे प्राप्त होनेवाले परमात्माके स्वरूपका पुनः वर्णन करते हैं—

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्॥ ७॥

तत्=वह परब्रह्म; **बृहत्**=महान्; **दिव्यम्**=दिव्य; **च**=और; **अचिन्त्यरूपम्**=अचिन्त्यस्वरूप है; **च**=तथा; **तत्**=वह; **सूक्ष्मात्**=सूक्ष्मसे भी; **सूक्ष्मतरम्**=अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें; **विभाति**=प्रकाशित होता है; **तत्**=(तथा) वह; **दूरात्**=दूरसे भी; **सुदूरे**=अत्यन्त दूर है; **च**=और; **इह**=इस (शरीर)-में रहकर; **अन्तिके च**=अति समीप भी है; **इह**=यहाँ; **पश्यत्सु**=देखनेवालोंके भीतर; **एव**=ही; **गुहायाम्**=उनकी हृदयरूपी गुफामें; **निहितम्**=स्थित है॥ ७॥

व्याख्या—वे परब्रह्म परमात्मा सबसे महान्, दिव्य—अलौकिक और अचिन्त्यस्वरूप हैं अर्थात् उनका स्वरूप मनके द्वारा चिन्तनमें आनेवाला नहीं है। अतः मनुष्यको श्रद्धापूर्वक परमात्माकी प्राप्तिके पूर्वकथित साधनोंमें लगे रहना चाहिये। साधन करते-करते वे परमात्मा अचिन्त्य एवं सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी स्वयं अपने स्वरूपको हृदयमें प्रकाशित कर देते हैं। परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हैं; ऐसा कोई भी स्थान नहीं, जहाँ वे न हों। अतः वे दूरसे भी दूर हैं अर्थात् जहाँतक हमलोग दूरका अनुभव करते हैं, वहाँ भी वे हैं और निकटसे भी निकट, यहीं अपने भीतर ही हैं। अधिक क्या, देखनेवालोंमें ही उनके हृदयरूप गुफामें छिपे हुए हैं। अतः उन्हें खोजनेके लिये कहीं दूसरी जगह जानेकी आवश्यकता नहीं है॥ ७॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥ ८॥

न चक्षुषा=(वह परमात्मा) न तो नेत्रोंसे; **न वाचा**=न वाणीसे (और); **न अन्यैः**=न दूसरी; **देवैः**=इन्द्रियोंसे; **अपि**=ही; **गृह्यते**=ग्रहण करनेमें आता है (तथा); **तपसा**=तपसे; **वा**=अथवा; **कर्मणा**=कर्मोंसे भी (वह); [**न गृह्यते**=ग्रहण नहीं किया जा सकता;] **तम्**=उस; **निष्कलम्**=अवयवरहित (परमात्मा)-को; **तु**=तो; **विशुद्धसत्त्वः**=विशुद्ध अन्तःकरणवाला (साधक); **ततः**=उस विशुद्ध अन्तःकरणसे; **ध्यायमानः**=(निरन्तर उसका) ध्यान करता हुआ ही; **ज्ञानप्रसादेन**=ज्ञानकी निर्मलतासे; **पश्यते**=देख पाता है॥ ८॥

व्याख्या—उन परब्रह्मको मनुष्य इन आँखोंसे नहीं देख सकता; इतना ही नहीं, वाणी आदि अन्य इन्द्रियोंद्वारा भी वे पकड़में नहीं आ सकते तथा नाना प्रकारकी तपश्चर्या और कर्मोंके द्वारा भी मनुष्य उन्हें नहीं पा सकता। उन अवयवरहित परम विशुद्ध परमात्माको तो मनुष्य सब भोगोंसे मुख मोड़कर, निःस्पृह होकर विशुद्ध अन्तःकरणके द्वारा निरन्तर एकमात्र उन्हींका ध्यान करते-करते ज्ञानकी निर्मलतासे ही देख सकता है। अतः जो उन परमात्माको पाना चाहे, उसे उचित है कि संसारके भोगोंसे सर्वथा विरक्त होकर उन सबकी कामनाका त्याग करके एकमात्र परब्रह्म परमात्माको ही पानेके लिये उन्हींके चिन्तनमें निमग्न हो जाय॥ ८॥

सम्बन्ध—*जब वे परब्रह्म परमात्मा सबके हृदयमें रहते हैं, तब सभी जीव उन्हें क्यों नहीं जानते? शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष ही क्यों जानता है? इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥ ९॥

यस्मिन्=जिसमें; **पञ्चधा**=पाँच भेदोंवाला; **प्राणः**=प्राण; **संविवेश**=भलीभाँति प्रविष्ट है (उसी शरीरमें रहनेवाला); **एषः**=यह; **अणुः**=सूक्ष्म; **आत्मा**=आत्मा; **चेतसा**=मनसे; **वेदितव्यः**=जाननेमें आनेवाला है; **प्रजानाम्**=प्राणियोंका (वह); **सर्वम्**=सम्पूर्ण; **चित्तम्**=चित्त; **प्राणैः**=प्राणोंसे; **ओतम्**=व्याप्त है; **यस्मिन् विशुद्धे**=जिस अन्तःकरणके विशुद्ध होनेपर; **एषः**=यह; **आत्मा**=आत्मा; **विभवति**=सब प्रकारसे समर्थ होता है॥ ९॥

व्याख्या—जिस शरीरमें प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान—इन पाँच भेदोंवाला प्राण प्रविष्ट होकर उसे चेष्टायुक्त कर रहा है, उसी शरीरके भीतर हृदयके मध्यभागमें मनद्वारा ज्ञातरूपसे जाननेमें आनेवाला यह सूक्ष्म जीवात्मा भी रहता है। परंतु समस्त प्राणियोंके समस्त अन्तःकरण प्राणोंसे ओतप्रोत हो रहे हैं अर्थात् इन प्राण और इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये उत्पन्न हुई नाना प्रकारकी भोगवासनाओंसे मलिन और क्षुब्ध हो रहे हैं; इस कारण सब लोग परमात्माको नहीं जान पाते। अन्तःकरणके विशुद्ध होनेपर ही यह जीवात्मा सब प्रकारसे समर्थ होता है। अतः यदि भोगोंसे विरक्त होकर यह परमात्माके चिन्तनमें लग जाता है, तब तो परमात्माको प्राप्त कर लेता है और यदि भोगोंकी कामना करता है तो इच्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है॥ ९॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः॥ १०॥

विशुद्धसत्त्वः=विशुद्ध अन्तःकरणवाला (मनुष्य); **यम् यम्**=जिस-जिस; **लोकम्**=लोकको; **मनसा**=मनसे; **संविभाति**=चिन्तन करता है; **च**=तथा; **यान् कामान् कामयते**=जिन भोगोंकी कामना करता है; **तम् तम्**=उन उन; **लोकम्**=लोकोंको; **जयते**=जीत लेता है; **च**=और; **तान् कामान्**=उन (इच्छित) भोगोंको भी; [**जयते**=प्राप्त कर लेता है;] **तस्मात् हि**=इसीलिये; **भूतिकामः**=ऐश्वर्यकी कामनावाला मनुष्य; **आत्मज्ञम्**=शरीरसे भिन्न आत्माको जाननेवाले महात्माका; **अर्चयेत्**=सत्कार करे॥ १०॥

व्याख्या—विशुद्ध अन्त:करणवाला मनुष्य यदि भोगोंसे सर्वथा विरक्त होकर उस निर्मल अन्त:करणद्वारा निरन्तर परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान करता है तब तो उन्हें प्राप्त कर लेता है, यह बात आठवें मन्त्रमें कही जा चुकी है; परंतु यदि वह सर्वथा निष्काम नहीं होता तो जिस-जिस लोकका मनसे चिन्तन करता है तथा जिन-जिन भोगोंको चाहता है, उन-उन लोकोंको ही जीतता है—उन्हीं लोकोंमें जाता है तथा उन-उन भोगोंको ही प्राप्त करता है; इसलिये ऐश्वर्यकी कामनावाले मनुष्यको शरीरसे भिन्न आत्माको जाननेवाले विशुद्ध अन्त:करणयुक्त विवेकी पुरुषकी सेवा-पूजा (आदर-सत्कार) करनी चाहिये; क्योंकि वह अपने लिये और दूसरोंके लिये भी जो-जो कामना करता है, वह पूर्ण हो जाती है॥ १०॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त॥ १॥

द्वितीय खण्ड

सम्बन्ध—*पूर्व प्रकरणमें विशुद्ध अन्त:करणवाले साधककी सामर्थ्यका वर्णन करनेके लिये प्रसङ्गवश कामनाओंकी पूर्तिकी बात आ गयी थी; अत: निष्कामभावकी प्रशंसा और सकामभावकी निन्दा करते हुए पुन: प्रकरण आरम्भ करते हैं—*

स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीरा:॥ १॥

स:=वह (निष्कामभाववाला पुरुष); **एतत्**=इस; **परमम्**=परम; **शुभ्रम्**=विशुद्ध (प्रकाशमान); **ब्रह्मधाम**=ब्रह्मधामको; **वेद**=जान लेता है; **यत्र**=जिसमें; **विश्वम्**=सम्पूर्ण जगत्; **निहितम्**=स्थित हुआ; **भाति**=प्रतीत होता है; **ये हि**=जो भी कोई; **अकामा:**=निष्काम साधक; **पुरुषम् उपासते**=परम पुरुषकी उपासना करते हैं; **ते**=वे; **धीरा:**=बुद्धिमान्; **शुक्रम्**=रजोवीर्यमय; **एतत्**=इस जगत्को; **अतिवर्तन्ति**=अतिक्रमण कर जाते हैं॥ १॥

व्याख्या—थोड़ा-सा विचार करनेपर प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्यकी समझमें यह बात आ जाती है कि इस प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले जगत्के रचयिता और परमाधार कोई एक परमेश्वर अवश्य हैं। इस प्रकार जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित हुआ प्रतीत होता है, उन परम विशुद्ध प्रकाशमय धामस्वरूप परब्रह्म परमात्माको समस्त भोगोंकी कामनाका त्याग करके निरन्तर उनका ध्यान करनेवाला साधक जान लेता है। यह बात निश्चित है कि जो मनुष्य उन परमपुरुष परमात्माकी उपासना करते हैं और एकमात्र उन्हींको चाहते हैं, वे इस रजोवीर्यमय (भोगमय) जगत्को लाँघ जाते हैं, किसी प्रकारके भोगोंमें उनका मन नहीं अटकता, वे सर्वथा पूर्ण निष्काम होकर रहते हैं। इसीलिये उन्हें बुद्धिमान् कहा गया है; क्योंकि जो सार वस्तुके लिये असारको त्याग दे, वही बुद्धिमान् है*॥ १॥

सम्बन्ध—*अब सकाम पुरुषकी निन्दा करते हुए ऊपर कही हुई बातको स्पष्ट करते हैं—*

कामान्य: कामयते मन्यमान: स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामा:॥ २॥

---

* एक आदरणीय महानुभावने यह अर्थ किया है—

'वह (आत्मज्ञ) समस्त कामनाओंके उत्कृष्ट आश्रयभूत उस ब्रह्मको जानता है, जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् अर्पित है और जो स्वयं शुद्धरूपसे प्रकाशित हो रहा है। उस इस प्रकारके आत्मज्ञ पुरुषकी भी जो लोग निष्कामभावसे मुमुक्षु होकर परमदेवके समान उपासना करते हैं, वे बुद्धिमान् पुरुष शरीरके उपादान कारणरूप मनुष्यदेहके बीजको अतिक्रमण कर जाते हैं अर्थात् फिर योनिमें प्रवेश नहीं करते·····।'

यः=जो; **कामान्**=भोगोंको; **मन्यमानः**=आदर देनेवाला मानव; **कामयते**=(उनकी) कामना करता है; **सः**=वह; **कामभिः**=उन कामनाओंके कारण; **तत्र तत्र**=उन-उन स्थानोंमें; **जायते**=उत्पन्न होता है (जहाँ वे उपलब्ध हो सकें); **तु**=परंतु; **पर्याप्तकामस्य**=जो पूर्णकाम हो चुका है, उस; **कृतात्मनः**=विशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषकी; **सर्वे**=सम्पूर्ण; **कामाः**=कामनाएँ; **इह एव**=यहीं; **प्रविलीयन्ति**=सर्वथा विलीन हो जाती हैं॥ २॥

व्याख्या—जो भोगोंको आदर देनेवाला है, जिसकी दृष्टिमें इस लोक और परलोकके भोग सुखके हेतु हैं, वही भोगोंकी कामना करता है और नाना प्रकारकी कामनाओंके कारण ही जहाँ-जहाँ भोग उपलब्ध हो सकते हैं, वहाँ-वहाँ कर्मानुसार उत्पन्न होता है; परंतु जो भगवान्‌को चाहनेवाले भगवान्‌के प्रेमी भक्त पूर्णकाम हो गये हैं, इस जगत्‌के भोगोंसे ऊब गये हैं, उन विशुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तोंकी समस्त कामनाएँ इस शरीरमें ही विलीन हो जाती हैं। स्वप्नमें भी उनकी दृष्टि भोगोंकी ओर नहीं जाती। फलतः उन्हें शरीर छोड़नेपर नवीन जन्म नहीं धारण करना पड़ता। वे भगवान्‌को पाकर जन्म-मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये छूट जाते हैं॥ २॥

सम्बन्ध—*पहले दो मन्त्रोंमें भगवान्‌के परम दुलारे जिन प्रेमी भक्तोंका वर्णन किया गया है, उन्हींको वे सर्वात्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम दर्शन देते हैं—यह बात अब अगले मन्त्रमें कहते हैं—*

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥ ३॥

अयम्=यह; **आत्मा**=परब्रह्म परमात्मा; **न प्रवचनेन**=न तो प्रवचनसे; **न मेधया**=न बुद्धिसे (और); **न बहुना श्रुतेन**=न बहुत सुननेसे ही; **लभ्यः**=प्राप्त हो सकता है; **एषः**=यह; **यम्**=जिसको; **वृणुते**=स्वीकार कर लेता है; **तेन एव**=उसके द्वारा ही; **लभ्यः**=प्राप्त किया जा सकता है; (क्योंकि) **एषः**=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **तस्य**=उसके लिये; **स्वाम् तनुम्**=अपने यथार्थ स्वरूपको; **विवृणुते**=प्रकट कर देता है॥ ३॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें यह बात समझायी गयी है कि वे परमात्मा न तो उनको मिलते हैं, जो शास्त्रोंको पढ़-सुनकर लच्छेदार भाषामें परमात्म-तत्त्वका नाना प्रकारसे वर्णन करते हैं; न उन तर्कशील बुद्धिमान् मनुष्योंको ही मिलते हैं, जो बुद्धिके अभिमानमें प्रमत्त हुए तर्कके द्वारा विवेचन करके उन्हें समझनेकी चेष्टा करते हैं; और न उनको ही मिलते हैं, जो परमात्माके विषयमें बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वे तो उसीको प्राप्त होते हैं, जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और वे स्वीकार उसीको करते हैं, जिसको उनके लिये उत्कट इच्छा होती है, जो उनके बिना रह नहीं सकता। परंतु जो अपनी बुद्धि या साधनपर भरोसा न करके केवल उनकी कृपाकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसे कृपा-निर्भर साधकपर परमात्मा कृपा करते हैं और योगमायाका परदा हटाकर उसके सामने अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें प्रकट हो जाते हैं*॥ ३॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥ ४॥

अयम्=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **बलहीनेन**=बलहीन मनुष्यद्वारा; **न लभ्यः**=नहीं प्राप्त किया जा सकता;

---

* एक आदरणीय महानुभावने इसका यह अर्थ माना है—

'यह आत्मा न तो वेद-शास्त्रके अधिक अध्ययनरूप प्रवचनसे प्राप्त होनेयोग्य है, न ग्रन्थके अर्थको धारण करनेकी शक्ति मेधासे अथवा न अधिक शास्त्र-श्रवणसे ही। यह विद्वान् जिस परमात्माको वरण करता—प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उस इच्छासे ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। नित्य प्राप्त होनेके कारण अन्य किसी साधनसे वह प्राप्त नहीं हो सकता। यह आत्मा उसके प्रति अपने आत्मस्वरूपको प्रकट कर देता है। जिस प्रकार प्रकाशमें घटादिकी अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार विद्याकी प्राप्ति होनेपर आत्माका आविर्भाव हो जाता है.....।'

च=तथा; **प्रमादात्**=प्रमादसे; **वा**=अथवा; **अलिङ्गात्**=लक्षणरहित; **तपसः**=तपसे; **अपि**=भी; **न [लभ्यः]**= नहीं प्राप्त किया जा सकता; **तु**=किंतु; **यः**=जो; **विद्वान्**=बुद्धिमान् साधक; **एतैः**=इन; **उपायैः**=उपायोंके द्वारा; **यतते**=प्रयत्न करता है; **तस्य**=उसका; **एषः**=यह; **आत्मा**=आत्मा; **ब्रह्मधाम**=ब्रह्मधाममें; **विशते**=प्रविष्ट हो जाता है॥ ४॥

व्याख्या—इस प्रकरणमें बताये हुए सबके आत्मारूप परब्रह्म परमेश्वर उपासनारूप बलसे रहित मनुष्यद्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। समस्त भोगोंकी आशा छोड़कर एकमात्र परमात्माकी ही उत्कट अभिलाषा रखते हुए निरन्तर विशुद्धभावसे अपने इष्टदेवका चिन्तन करना—यही उपासनारूपी बलका संचय करना है। ऐसे बलसे रहित पुरुषको वे नहीं मिलते। इसी प्रकार कर्तव्यत्यागरूप प्रमादसे भी नहीं मिलते तथा सात्त्विक लक्षणोंसे रहित संयमरूप तपसे भी किसी साधकद्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। किंतु जो बुद्धिमान् साधक इन पूर्वोक्त उपायोंसे प्रयत्न करता है, अर्थात् प्रमादरहित होकर उत्कट अभिलाषाके साथ निरन्तर उन परमेश्वरकी उपासना करता है, उसका आत्मा परब्रह्म परमात्माके स्वरूपमें प्रविष्ट हो जाता है॥ ४॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त प्रकारसे परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंके लक्षण बतलाते हैं—*

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति॥ ५॥

वीतरागाः=सर्वथा आसक्तिरहित; **कृतात्मानः**=(और) विशुद्ध अन्तःकरणवाले; **ऋषयः**=ऋषिलोग; **एनम्**=इस परमात्माको; **सम्प्राप्य**=पूर्णतया प्राप्त होकर; **ज्ञानतृप्ताः**=ज्ञानसे तृप्त (एवं); **प्रशान्ताः**=परम शान्त (हो जाते हैं); **युक्तात्मानः**=अपने-आपको परमात्मामें संयुक्त कर देनेवाले; **ते**=वे; **धीराः**=ज्ञानीजन; **सर्वगम्**=सर्वव्यापी परमात्माको; **सर्वतः**=सब ओरसे; **प्राप्य**=प्राप्त करके; **सर्वम् एव**=सर्वरूप परमात्मामें ही; **आविशन्ति**=प्रविष्ट हो जाते हैं॥ ५॥

व्याख्या—वे विशुद्ध अन्तःकरणवाले सर्वथा आसक्तिरहित महर्षिगण उपर्युक्त प्रकारसे इन परब्रह्म परमात्माको भलीभाँति प्राप्त होकर ज्ञानसे तृप्त हो जाते हैं। उन्हें किसी प्रकारके अभावका बोध नहीं होता, वे पूर्णकाम हो जाते हैं। वे अपने-आपको परमात्मामें लगा देनेवाले ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्माको सब ओरसे प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मामें ही पूर्णतया प्रविष्ट हो जाते हैं॥ ५॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंकी महिमाका वर्णन करके अब ब्रह्मलोकमें जानेवाले महापुरुषोंकी मुक्तिका वर्णन करते हैं—*

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥ ६॥

[ये] वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः=जिन्होंने वेदान्त (उपनिषद्)-शास्त्रके विज्ञानद्वारा उसके अर्थभूत परमात्माको पूर्ण निश्चयपूर्वक जान लिया है (तथा); **संन्यासयोगात्**=कर्मफल और आसक्तिके त्यागरूप योगसे; **शुद्धसत्त्वाः**=जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है; **ते**=वे; **सर्वे**=समस्त; **यतयः**=प्रयत्नशील साधकगण; **परान्तकाले**=मरणकालमें (शरीर त्यागकर); **ब्रह्मलोकेषु**=ब्रह्मलोकमें (जाते हैं और वहाँ); **परामृताः**=परम अमृतस्वरूप होकर; **परिमुच्यन्ति**=सर्वथा मुक्त हो जाते हैं॥ ६॥

व्याख्या—जिन्होंने वेदान्तशास्त्रके सम्यक् ज्ञानद्वारा उसके अर्थस्वरूप परमात्माको भलीभाँति निश्चयपूर्वक जान लिया है तथा कर्मफल और कर्मासक्तिके त्यागरूप योगसे जिनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया है, ऐसे सभी प्रयत्नशील साधक मरणकालमें शरीरका त्याग करके परब्रह्म परमात्माके परम धाममें जाते हैं और वहाँ परम अमृतस्वरूप होकर संसार-बन्धनसे सदाके लिये सर्वथा मुक्त हो जाते हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*जिनको परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति इसी शरीरमें हो जाती है, उनकी अन्तकालमें कैसी स्थिति होती है—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति॥ ७॥

पञ्चदश=पंद्रह; **कलाः**=कलाएँ; **च**=और; **सर्वे**=सम्पूर्ण; **देवाः**=देवता अर्थात् इन्द्रियाँ; **प्रतिदेवतासु**=अपने-अपने अभिमानी देवताओंमें; **गताः**=जाकर; **प्रतिष्ठाः**=स्थित हो जाते हैं; **कर्माणि**=(फिर) समस्त कर्म; **च**=और; **विज्ञानमयः**=विज्ञानमय; **आत्मा**=जीवात्मा; **सर्वे**=ये सब-के-सब; **परे अव्यये**=परम अविनाशी परब्रह्ममें; **एकीभवन्ति**=एक हो जाते हैं॥ ७॥

व्याख्या—उस महापुरुषका जब देहपात होता है, उस समय पंद्रह कलाएँ* और मनसहित सब इन्द्रियोंके देवता—ये सब अपने-अपने अभिमानी समष्टि देवताओंमें जाकर स्थित हो जाते हैं। उनके साथ उस जीवन्मुक्तका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उसके बाद उसके समस्त कर्म और विज्ञानमय जीवात्मा—सब-के-सब परम अविनाशी परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं॥ ७॥

सम्बन्ध—*किस प्रकार लीन हो जाते हैं, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ ८॥

यथा=जिस प्रकार; **स्यन्दमानाः**=बहती हुई; **नद्यः**=नदियाँ; **नामरूपे**=नाम-रूपको; **विहाय**=छोड़कर; **समुद्रे**=समुद्रमें; **अस्तम् गच्छन्ति**=विलीन हो जाती हैं; **तथा**=वैसे ही; **विद्वान्**=ज्ञानी महात्मा; **नामरूपात्**=नाम-रूपसे; **विमुक्तः**=रहित होकर; **परात् परम्**=उत्तम-से-उत्तम; **दिव्यम्**=दिव्य; **पुरुषम्**=परम पुरुष परमात्माको; **उपैति**=प्राप्त हो जाता है॥ ८॥

व्याख्या—जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना-अपना नाम-रूप छोड़कर समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी महापुरुष नाम-रूपसे रहित होकर परात्पर दिव्य पुरुष परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है—सर्वतोभावसे उन्हींमें विलीन हो जाता है॥ ८॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥ ९॥

ह=निश्चय ही; **यः वै**=जो कोई भी; **तत्**=उस; **परमम् ब्रह्म**=परम ब्रह्म परमात्माको; **वेद**=जान लेता है; **सः**=वह महात्मा; **ब्रह्म एव**=ब्रह्म ही; **भवति**=हो जाता है; **अस्य**=इसके; **कुले**=कुलमें; **अब्रह्मवित्**=ब्रह्मको न जाननेवाला; **न भवति**=नहीं होता; **शोकम् तरति**=(वह) शोकसे पार हो जाता है; **पाप्मानम् तरति**=पाप-समुदायसे तर जाता है; **गुहाग्रन्थिभ्यः**=हृदयकी गाँठोंसे; **विमुक्तः**=सर्वथा छूटकर; **अमृतः**=अमर; **भवति**=हो जाता है॥ ९॥

व्याख्या—यह बिलकुल सच्ची बात है कि जो कोई भी उस परब्रह्म परमात्माको जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुलमें अर्थात् उसकी संतानोंमें कोई भी मनुष्य ब्रह्मको न जाननेवाला नहीं होता। वह सब प्रकारके शोक और चिन्ताओंसे सर्वथा पार हो जाता है, सम्पूर्ण पापसमुदायसे सर्वथा तर जाता है, हृदयमें स्थित सब प्रकारके संशय, विपर्यय देहाभिमान, विषयासक्ति आदि ग्रन्थियोंसे सर्वथा छूटकर अमर हो जाता है—जन्म-मृत्युसे रहित हो जाता है॥ ९॥

---

* पंद्रह कलाएँ ये हैं—श्रद्धा, आकाशादि पञ्च महाभूत, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक तथा नाम (देखिये प्रश्नोपनिषद् ६। ४)

सम्बन्ध—*इस ब्रह्मविद्याके अधिकारीका वर्णन करते हैं—*

तदेतदृचाभ्युक्तम्—

क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः।
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्॥ १०॥

तत्=उस ब्रह्मविद्याके विषयमें; **एतत्**=यह बात; **ऋचा अभ्युक्तम्**=ऋचाद्वारा कही गयी है; **क्रियावन्तः**=जो निष्कामभावसे कर्म करनेवाले; **श्रोत्रियाः**=वेदके अर्थके ज्ञाता (तथा); **ब्रह्मनिष्ठाः**=ब्रह्मके उपासक हैं (और); **श्रद्धयन्तः**=श्रद्धा रखते हुए; **स्वयम्**=स्वयं; **एकर्षिम्**='एकर्षि' नामवाले प्रज्वलित अग्निमें; **जुह्वते**=नियमानुसार हवन करते हैं; **तु**=तथा; **यैः**=जिन्होंने; **विधिवत्**=विधिपूर्वक; **शिरोव्रतम्**=सर्वश्रेष्ठ व्रतका; **चीर्णम्**=पालन किया है; **तेषाम् एव**=उन्हींको; **एताम्**=यह; **ब्रह्मविद्याम्**=ब्रह्मविद्या; **वदेत**=बतलानी चाहिये॥ १०॥

व्याख्या—जिसका इस उपनिषद्में वर्णन हुआ है, उस ब्रह्मविद्याके विषयमें यह बात ऋचाद्वारा कही गयी है कि जो अपने-अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थितिके अनुसार निष्कामभावसे यथायोग्य कर्म करनेवाले, वेदके यथार्थ अभिप्रायको समझनेवाले, परब्रह्म परमात्मामें श्रद्धा रखनेवाले और उनके जिज्ञासु हैं, जो स्वयं 'एकर्षि' नामसे प्रसिद्ध प्रज्वलित अग्निमें शास्त्रविधिके अनुसार हवन करते हैं तथा जिन्होंने विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया है, उन्हींको यह ब्रह्मविद्या बतलानी चाहिये॥ १०॥

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः॥ ११॥

तत्=उसी; **एतत्**=इस; **सत्यम्**=सत्यको अर्थात् यथार्थ विद्याको; **पुरा**=पहले; **अङ्गिराः ऋषिः**=अङ्गिरा ऋषिने; **उवाच**=कहा था; **अचीर्णव्रतः**=जिसने ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं किया है; **एतत्**=(वह) इसे; **न**=नहीं; **अधीते**=पढ़ सकता; **परमऋषिभ्यः नमः**=परम ऋषियोंको नमस्कार है; **परमऋषिभ्यः नमः**=परम ऋषियोंको नमस्कार है॥ ११॥

व्याख्या—उस ब्रह्मविद्यारूप इस सत्यका पहले महर्षि अङ्गिराने उपर्युक्त प्रकारसे शौनक ऋषिको उपदेश दिया था। जिसने विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं किया हो, वह इसे नहीं पढ़ पाता अर्थात् इसका गूढ़ अभिप्राय नहीं समझ सकता। परम ऋषियोंको नमस्कार है, परम ऋषियोंको नमस्कार है। इस प्रकार दो बार ऋषियोंको नमस्कार करके ग्रन्थ-समाप्तिकी सूचना दी गयी है॥ ११॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त॥ २॥
॥ तृतीय मुण्डक समाप्त॥ ३॥
॥ अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ प्रश्नोपनिषद्के प्रारम्भमें दिया जा चुका है।]